मानवाधिकार : नई दिशाएँ

सर्वे
भवन्तु सुखिनः

वार्षिक, अंक – 6

2009

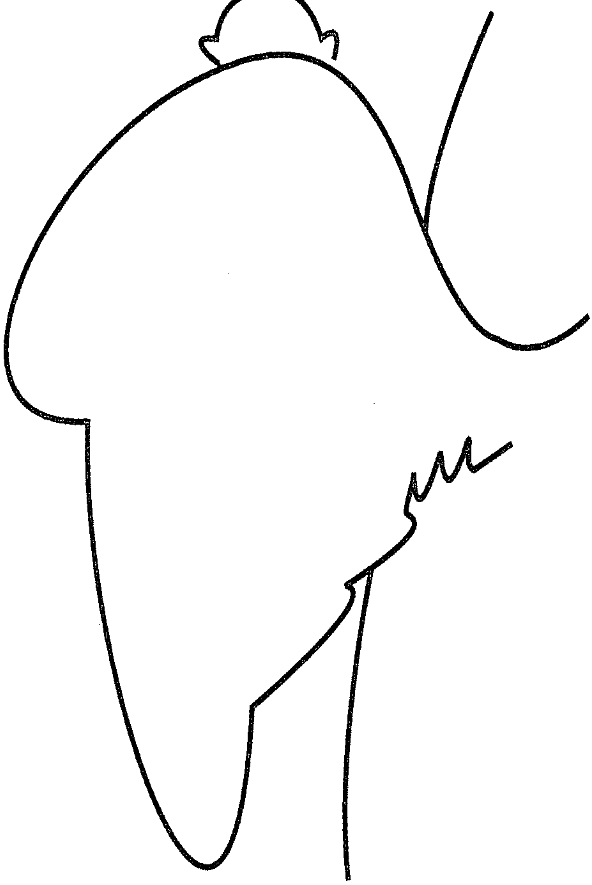

न्याय में जितनी उदारता की जरूरत है, इतनी ही न्याय की उदारता में है।

—महात्मा गाँधी

23-10-1945

प्रकाशक : राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
फरीदकोट हाऊस,
कॉपरनिकस मार्ग,
नई दिल्ली – 1,
भारत
वेबसाईट : **www.nhrc.nic.in**
ई–मेल : **covdnhrc@nic.in**

© 2009 राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत

प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के निजी विचार हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, सलाहकार मण्डल या संपादक मण्डल का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

मुद्रण एवं डिजाईनिंग : सेंट जोसफ़ प्रेस
नई दिल्ली – 110019
मो. : 9999891207
ई–मेल : stjpress@yahoo.co.in

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

कार्यवाहक अध्यक्ष

न्यायमूर्ति श्री जी.पी. माथुर

सदस्य

न्यायमूर्ति श्री बी.सी. पटेल

श्री सत्यब्रत पाल

श्री पी.सी. शर्मा

महासचिव

अखिल कुमार जैन

महानिदेशक

सुनील कृष्ण

रजिस्ट्रार

अनिल कुमार गर्ग

संयुक्त सचिव

जगदीश प्रसाद मीणा

संयुक्त सचिव (प्रशिक्षण)

पी.एम.वी. सिरोमनी

सलाहकार मंडल

पी.सी. शर्मा

अखिल कुमार जैन

डॉ. बी. एस. परसीरा

सुनील कृष्ण

प्रो. नामवर सिंह

जगदीश प्रसाद मीणा

डॉ. संजय दुबे

संपादक मंडल

संपादक
जगदीश प्रसाद मीणा

सह संपादक
डॉ. सरोज कुमार शुक्ल

सहयोग : रचना
राजेश कुमार कालड़ा
अंजली सकलानी

कम्प्यूटरीकरण : सीमा शर्मा
संतोष

अनुक्रम

- **दो शब्द** : *xi*
- **आमुख** : *xii*
- **पुरोवाक्** : *xiv*
- **संपादकीय** : *xvi*
- **लेख** : 1

क्रम सं.	लेख का विषय	लेखक का नाम	पृष्ठ संख्या
1.	सूचना का अधिकार	न्यायमूर्ति जी.पी. माथुर	3
2.	सूचना का अधिकार,मानव अधिकार तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य	न्यायमूर्ति आर.सी. लाहोटी	7
3.	आजीवन कारावास और समता का मूल अधिकार	चमन लाल	12
4.	मानव अधिकारों का अंतरराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य	प्रो. गिरीश्वर मिश्र	23
5.	बंधुआ मजदूरी प्रथा : समस्या एवं समाधान	डॉ. सुभाष शर्मा	28
6.	सामाजिक न्याय तथा केंद्रीय अर्द्धसैनिक बल	राजेश प्रताप सिंह	38
7	तमिल साहित्य की लोक परम्परा और मानव अधिकार	डॉ एन. सुंदरम	47
8.	प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक चेतना और मानवाधिकार	डॉ. सुमन बंसल	52
9.	क़ैदियों के लिए शिक्षा का अधिकार	कुंवर विजय प्रताप सिंह	58
10.	मानव अधिकार और नैसर्गिक न्याय: सूचना के अधिकार के संदर्भ में	प्रो. शिवदत्त शर्मा डॉ. प्रीती शर्मा	70

11.	गांधी चिंतन एवम् मानव अधिकार	डॉ. प्रतिभा	83
12.	मानव अधिकारों के हनन का एक क्रूर पक्षः महिलाओं एवं बच्चों का अवैध व्यापार	डॉ. ममता चंदशेखर	92
13.	मानव अधिकार और मीडिया	अरविन्द कुमार सिंह	96
14.	शिक्षा : एक मानव अधिकार	आलोक चांटिया	108
15.	सहभागिता प्रणाली और मानवाधिकार	कन्हैया त्रिपाठी	115
16.	मानव अधिकार एवं ग्रामीण जनता	आलोक कुमार यादव	123
•	**साक्षात्कार**		129
17.	दान नहीं अधिकार दीजिए, प्रो. शांता सिन्हा : प्रस्तुति : नीता अग्रवाल		131
•	**मानव अधिकारों से संबंधित महत्वपूर्ण मामलों पर आधारित कहानियाँ**		**145**
18.	(i) मानव अधिकार रक्षा की पहल	प्रस्तुति : ब्रजेन्द्र त्रिपाठी	147
	(ii) आत्मा पर लगा घाव,		151
	(iii) हत्या या आत्महत्या,		157
	(iv) नवजात शिशु की अकाल मृत्यु,		159
	(v) कैदी पर अत्याचार		161
•	**पुस्तक समीक्षा**		**165**
19.	सूचना का अधिकार : एक कारगर हथियार	शिवानी खरे	167
•	**नए प्रकाशन**		**171**
20.	राज्य की अभिरक्षा और मानव अधिकार	डॉ.के.पी.सिंह,आई.पी.एस.	173

* * *

दो शब्द

"मानवाधिकार : नई दिशाएँ" के छठे अंक के प्रकाशन पर हम अपने सुधी लेखकों और पाठकों का हार्दिक अभिवादन करते हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के इस प्रकाशन के माध्यम से हम निश्चित रूप से एक विशाल सामाजिक समुदाय से जुड़ सकेंगे तथा अपने लक्ष्य को भी प्राप्त कर सकेंगे।

मुझे हर्ष है कि वर्तमान अंक में मानव अधिकारों से संबंधित विविध विषयों एवं उससे जुड़े सरोकारों को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। ये लेख जहां एक ओर सूचनाप्रद, उपयोगी और ज्ञानवर्धक सामग्री प्रस्तुत करने में सक्षम हैं, वहीं दूसरी ओर मानव अधिकारों के अध्ययनों एवं अकादमिक परंपरा में लाभदायक होंगे।

हमें हर्ष है कि हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार एवं आलोचक प्रो0 नामवर सिंह पत्रिका के सलाहकार मंडल के सदस्य के रूप में अपना बहुमूल्य योगदान दे रहे हैं। अतः आयोग उनके प्रति आभार प्रकट करता है।

राष्ट्रभाषा के माध्यम से चिंतन–मनन करने से ही हम अपने लक्ष्य को पाने में सफल हो सकेंगे। देश के बुद्धिजीवियों, साहित्यकारों तथा शोध करने वाले विद्यार्थियों से अनुरोध है कि वे अपनी प्रतिक्रियाओं से अवगत कराने के साथ–साथ कुछ सुझाव भी दें ताकि हम इस प्रकाशन को और अधिक प्रभावी एवं उपयोगी ढंग से प्रकाशित कर सकें। मुझे विश्वास है कि आयोग की यह पत्रिका भारतीय नागरिकों में मानव अधिकारों के प्रति संवेदनशीलता और जागरूकता लाने में सहायक सिद्ध होगी।

(न्यायमूर्ति श्री जी. पी. माथुर)
कार्यवाहक अध्यक्ष

आमुख

मानव अधिकार मात्र एक अवधारणा नहीं है अपितु यह मानव जीवन एवं उसकी संवेदनाओं से जुड़ी हुई एक मूलभूत आवश्यकता है जिसके अभाव में हम गरिमापूर्ण जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते। व्यक्ति के चतुर्मुखी विकास के लिए जिन अनुकूल एवं महत्वपूर्ण स्थितियों की आवश्यकता होती है उसी की संपूर्णता का नाम मानव अधिकार है। इस समष्टि की अवधारणा और प्रतिष्ठा को लोकोन्मुखी बनाने के लिए आयोग की पहल है यह वार्षिक पत्रिका। पत्रिका के पिछले 5 अंकों की सफलता से हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि इसने मानव अधिकारों से जुड़े विभिन्न ज्वलन्त मुद्दों पर समाज के हर वर्ग का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है।

सभ्यता और संस्कृति की अजस्त्र धारा में इंसान की गरिमा, सर्वोच्चता तथा मानवीय प्रतिष्ठा का भाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इस वैश्विक और सार्वजनीन अवधारणा के भीतर हमारे देश में भी मानव अधिकारों के विविध संदर्भ और आयाम प्रकट हुए हैं।

यदि हम गौर करें तो हमें ऐसा अनुभव होगा कि हमारे समाज में मानव अधिकारों के मूल्यों को स्थापित करने और उसकी निगरानी करने की चुनौती दिन प्रतिदिन कठिन होती जा रही है। स्वार्थ, अज्ञान, प्रभावी व्यवस्था का अभाव तथा समय पर उपयुक्त कदम न लेने के कारण समाज के हर क्षेत्रों में दिन प्रतिदिन मानव अधिकारों के हनन की घटनाएं घटित हो रही हैं। आयोग का निरन्तर यह प्रयास रहा है कि ऐसी घटनाओं को स्वतः संज्ञान में लेकर देश के न्यायिक व्यवस्था के अनुसार तत्काल कार्रवाई करने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए। हमारी सतर्क पहल के परिणाम स्वरूप अनेक ऐसे मामले जो किन्हीं कारणों से दरकिनार कर दिए गए थे या जिन्हें

दबा दिया गया था, सामने लाए जा सके और उन पर पुनः विचार किया जा सका।

मुझे पूरा विश्वास है कि आयोग की यह पत्रिका "**मानव अधिकार : नई दिशाएँ**" मानव अधिकारों की वैचारिक परंपरा की नींव को और अधिक सुदृढ़ करने में सक्षम होने के साथ–साथ आयोग और समाज के बीच पारस्परिक आदान–प्रदान का एक सशक्त माध्यम बन सकेगी।

पी. सी. शर्मा

(पी. सी. शर्मा)

पुरोवाक्

सभ्यता और संस्कृति की अजस्र धारा में इंसान की गरिमा, सर्वोच्चता तथा मानवीय प्रतिष्ठा का भाव सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। इस वैश्विक और सार्वजनीन अवधारणा के भीतर हमारे देश में भी मानव अधिकारों के विविध संदर्भ और आयाम प्रकट हुए हैं। वास्तव में भारतीय विचारधारा की आधार में मानव अधिकारों का अंकुर पहले से ही विद्यमान था। चाहे वे अशोक के शिलालेख हों, भगवान बुद्ध और भगवान महावीर के उपदेश हों अथवा वेदों, बाइबिल, कुरान और गुरू ग्रंथ साहिब के पवित्र संदेश हों, सबमें यही बातें समान रूप से दिखाई देती हैं। यदि हम मध्यकालीन संतों की वाणियों की ओर ध्यान दें तो भी हमें उनमें समता और सर्व कल्याण की यही धारा निरन्तर प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है।

स्वतंत्रता और समानता लोकतांत्रिक एवं सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला हैं। सामाजिक वैमनस्य, विषमताएं तथा अज्ञानता के कारण लोकतांत्रिक व्यवस्था में समाज के हर वर्ग की भागीदारी आज भी सुनिश्चित नहीं हो पा रही है। इस कारण मानव अधिकारों के उल्लंघन की ऐसी अनेक घटनाएं हो रही हैं जो न केवल निंदनीय हैं अपितु समाज के लिए अभिशाप भी हैं। ऐसी घटनाएं देश व समाज की उन्नति के मार्ग में बाधाएं खड़ी कर रही हैं। मुझे खुशी है कि आयोग के सतर्क हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप देश के सामाजिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रों में सकारात्मक परिणाम दिखने लगा हैं। फिर भी, बहुत सारी ऐसी चुनौतियां हमारे समक्ष विद्यमान हैं जिन पर हमें विजय प्राप्त करनी है। इन सब के लिए यह आवश्यक है कि मानव अधिकारों को भारतीय सामाजिक चेतना व अवधारणा का एक स्वाभाविक अंग बनाया जाए। जब तक हमारी स्वाभाविक एवं आंतरिक सोच में ऐसा बदलाव नहीं होगा तब तक यह प्रयास अपूर्ण ही रहेगा।

प्रस्तुत पत्रिका जहाँ एक ओर परंपरागत भारतीय चिंतन को समग्र रूप से विश्लेषित एवं पारिभाषित करने में सफल हुई है, वहीं दूसरी ओर इसने मानव अधिकारों से संबंधित अनेक समसामयिक मुद्दों पर भी विचार परिधि को आगे बढ़ाने की चेष्टा की है। ऐसे प्रकाशन से हम एक विशाल भारतीय समाज में मानव अधिकारों की समग्र चेतना को विकसित, पुष्पित एवं पल्लवित करने में निश्चित रूप से सफल होंगे। इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुए पत्रिका के इस अंक में मानव अधिकारों से संबंधित विविध पहलुओं, संकल्पनाओं तथा उसके उद्भव और विकास के क्रमिक चिंतन को आधार बनाकर लेख प्रकाशित किए जा रहे हैं।

मुझे विश्वास है कि पत्रिका का वर्तमान अंक उपर्युक्त दायित्व का निर्वाह करने में सफल होगा।

(अखिल कुमार जैन)

संपादकीय

संपूर्ण समाज का अभ्युदय और कल्याण भारतीय मनन–चिन्तन की परंपरा के केंद्र में रहा है। यह हमेशा बना रहे इसके लिए यह जरूरी है कि उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं को पहचाना जाए और उसका निवारण हो। प्रशासन एवं न्याय की व्यवस्था को इतना मजबूत, सशक्त एवं निरपेक्ष बनाना होगा कि समाज के हर एक वर्ग को उसकी योग्यता और क्षमता के अनुसार उपयुक्त अवसर मिल सके। इस दृष्टि से राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग अपने दायरे में अनेक स्तरों पर सजगता के साथ न केवल प्रयासरत है बल्कि आवश्यकतानुसार हस्तक्षेप भी कर रहा है। आयोग की हिंदी पत्रिका **"मानवाधिकार : नई दिशाएं"** इन समग्र प्रयासों को समाज के समक्ष लाने का प्रयास करती है ताकि समाज तक इनकी पहुँच हो तथा उन्हें और प्रभावी बनाने के लिए सुझाव मिल सकें।

वाणी की स्वतंत्रता और कानून के समक्ष समानता सम्मानपूर्ण जीवन की नितांत आवश्यकता है। इसीलिए मौलिक अधिकारों के अंतर्गत राजनीतिक और नागरिक स्वतंत्रता को बाध्यकारी माना गया है। इनका उल्लंघन होने पर व्यक्ति न्याय की शरण में जा सकता है। किंतु आज इक्कीसवीं सदी में पहुँचने के बाद भी हम यह अनुभव कर रहे हैं कि मौलिक अधिकारों के अनुपालन में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयाँ आ रही हैं। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अब भी छुआछूत, अंधविश्वास तथा जातीय भेदभाव का बोलबाला बना हुआ है। स्वतंत्रता और समानता के आदर्श को यथार्थ के धरातल पर लाने के लिए अभी भी गंभीर प्रयास की जरूरत है।

आज भी देश की आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन कर रहा है। गरीबी मानव अधिकारों का क्रूरतम उल्लंघन है। गरीबी के चलते मनुष्य अपने मौलिक अधिकारों से वंचित हो जाता है।

रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति न हो पाना समाज की शोचनीय दशा को प्रतिबिम्बित करता है।

दूषित पर्यावरण का व्यक्ति और समाज के जीवन पर बहुत अधिक दुष्प्रभाव पड़ता है जिससे विकास के मार्ग में अनेक बाधा उत्पन्न होती है। स्वच्छ पर्यावरण के अधिकार का उद्देश्य सभी के लिए जीवन की गुणवत्ता सुनिश्चित कराना है। काफी बड़ी संख्या में लोग अभी भी शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सेवाओं के अभाव में जी रहे हैं। बच्चों, वृद्धजनों और मनोरोग की समस्याएं भी कम जटिल नहीं हैं। महिलाएं हमारी आबादी का आधा हिस्सा हैं लेकिन यह आबादी आये दिन शिशु–हत्या, भ्रूण–हत्या, दहेज, यौन–उत्पीड़न और बलात्कार का शिकार होती रहती है। आयोग के समक्ष विचारार्थ आने वाली शिकायतों में इन सबसे जुड़ी शिकायतें काफी संख्या में होती हैं।

देश और समाज का विकास का क्रम तभी सुचारू रूप से चलेगा जब कानून–व्यवस्था ठीक हो और सर्वत्र शांति हो। इस दृष्टि से पुलिस–प्रशासन और अर्द्ध सैनिक बलों पर आए दिन मानव अधिकार हनन के आरोप लगाए जाते हैं। ये आरोप मानव अधिकार संरक्षण की दिशा में एक बड़ी चुनौती है क्योंकि इन्हीं संगठनों पर मानव अधिकार संरक्षण का एक बहुत बड़ा दायित्व भी है।

पत्रिका के इस अंक में लेखकों ने मानव अधिकारों के स्वरूप की सैद्धांतिक विवेचना के साथ–साथ साहित्य, सूचना का अधिकार, महिलाओं और बच्चों की समस्या, नैसर्गिक न्याय, सामाजिक न्याय, कैदियों के अधिकार, शिक्षा, मीडिया एवं अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य जैसे समाज के कई ज्वलंत प्रश्नों पर गंभीरता से विचार किया है। समय के साथ जीवन–मूल्यों में और उन संदर्भों में भी बदलाव आता है जिनमें ये मूल्य स्थापित किए जाते और सक्रिय होते हैं। इस दृष्टि से यदि आप विचार करें तो पाएंगे कि भारत में कानूनी व्यवस्था में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन लाए गए हैं। उदाहरण के लिए शिक्षा का अधिकार, सूचना का अधिकार तथा रोजगार की गारंटी की व्यवस्था है इनसे मानव अधिकार पर सोच विचार का दायरा बृहत्तर हुआ है। तात्पर्य यह है कि मानव अधिकारों के विश्लेषण के लिए निरंतर गंभीर चिंतन होते रहना की आवश्यकता है।

पत्रिका के वर्तमान अंक से आयोग ने एक **साक्षात्कार** कॉलम से एक नई श्रृंखला की शुरूआत कर एक नई पहल की है। हम इस कड़ी में सर्वप्रथम राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग की अध्यक्ष तथा मैगसेसे पुरस्कार से सम्मानित प्रो. शांता सिन्हा का साक्षात्कार प्रकाशित कर रहें हैं। भविष्य में भी इस क्रम को जारी रखने का प्रयास किया जाएगा। मानव अधिकारों से संबंधित राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के महत्वपूर्ण निर्णयों को कहानी का स्वरूप देकर उन्हें रोचक बनाने का प्रयास भी किया गया है।

हम यह आशा करते हैं कि यह पत्रिका मानव अधिकारों से संबंधित विविध आयामों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करेगी और उनपर चिंतन के लिए प्रेरित करेगी।

जे पी मीणा

(जगदीश प्रसाद मीणा)

लेख

सूचना का अधिकार

न्यायमूर्ति जी.पी. माथुर*

हमें इक्कीसवीं सदी में प्रवेश किए 10 वर्ष होने को आए किंतु मानव अधिकारों का हनन अब भी जारी है चाहे वह बालश्रम हो, पुलिस उत्पीड़न हो, महिलाओं का शोषण–दमन हो, समाज में गैरबराबरी का बरताव हो। इससे बचाव तभी हो सकता है, जब सत्ता, प्रतिष्ठान तथा सरकारें अपनी ज़िम्मेवारियों को बखूबी निभाएं और साथ ही न्यायालय और क़ानून व्यवस्था की पूरी प्रक्रिया साफ़–सुथरी व पारदर्शी हो।

अधिकार न्याय की विशेष अवधारणा से जुड़े हुए हैं। अधिकार प्रत्येक नागरिक को प्रदत्त वे सीमाएँ हैं, जिनका उल्लंघन न तो कोई समाज और न ही राज्य कर सकता है। ऐसे में यह आवश्यक है कि इन अधिकारों का ज्ञान राज्य एवं प्रशासन तंत्र की सीमा में सिमट कर न रहे, बल्कि उन तक भी पहुँचे, जिनके लिए वे बने हैं। इस दृष्टि से इस ज्ञान के प्रचार एवं प्रसार के लिए हिंदी के साथ–साथ अन्य भारतीय भाषाओं का उपयोग आवश्यक ही नहीं, अपितु अपरिहार्य भी है।

यह समय ऐसा है, जब भारत ही नहीं, बल्कि सारे विश्व में मानव अधिकारों के साथ–साथ सूचना के अधिकार के प्रति भी एक विशेष मुहिम छिड़ी हुई है। कुछ एक क्षेत्रों में इस मुहिम ने एक आंदोलन का रूप ले लिया है। इस क्षेत्र में प्रिंट मीडिया के साथ–साथ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी इस अधिकार के प्रति लोगों को जागरूक कर रहा है। सूचना के अधिकार के प्रति लोग सचेत हुए हैं और इसने विभिन्न सरकारी विभागों और संस्थाओं को जनता के प्रति जवाबदेह बनाया है। मीडिया का विशेषकर क्षेत्रीय भाषाओं के समाचार पत्रों का इसमें विशेष योगदान रहा है।

जानने का अधिकार अथवा सूचना का अधिकार लोकतांत्रिक व्यवस्था को चलाने और उस पर अंकुश लगाने की एक न्यूनतम शर्त है। यह अधिकार जहां एक ओर गोपनीयता के विरुद्ध पारदर्शिता की पुरज़ोर वकालत करता है वहीं दूसरी ओर नीतियों के निर्माण एवं उसके अनुपालन

---

* **कार्यवाहक अध्यक्ष, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, भारत**

में आम जनता की भागीदारी को भी सुनिश्चित करता है। संशय, अकुशलता और मर्जी की शिकार सरकारी व्यवस्था के ईमानदार, सक्षम और जवाबदेह बनाने का एक कारगर औजार भी है सूचना का अधिकार। भारत में यह अधिकार देने का मसला प्राथमिकता के सबसे निचले पायदान पर रहा। हमारे संविधान ने भी अभिव्यक्ति की आजादी का अधिकार तो दिया किन्तु जानने का नहीं।

इस संदर्भ में अगर हम दूसरे देशों की ओर देखते हैं तो पाते हैं कि विश्व में सबसे पहले स्वीडेन ने 240 वर्ष पूर्व सूचना की स्वतंत्रता का अधिनियम पारित किया। इसके मूल में फिनिश पादरी एंडर्स साइडे नियस थे जो मानववादी कनफूची दर्शन से प्रेरित थे। यह अधिनियम लीबिया में 1888 में, फिनलैंड में 1951 में, अमेरिका में 1966 में, डेनमार्क–नार्वे में 1970 में, फ्रांस में 1978 में आस्ट्रेलिया–न्यूजीलैंड में 1982 में और कनाडा में 1983 में लागू हुआ।

करीब 15 वर्षों के सुदीर्घ जनान्दोलन के बाद 2005 में भारत में केन्द्र सरकार द्वारा सूचना का अधिकार अधिनियम लागू किया गया। निस्संदेह इस अधिनियम ने आम आदमी के हाथ में एक मजबूत और कारगर औजार दिया है। सरकारी तंत्र में आम आदमी के दखल के बाद सरकारी कामकाज के अधिक कुशल, ईमानदार और जनोन्मुखी होने की अपेक्षा गलत नहीं है। इस अधिनियम के लागू होने के बाद गोपनीयता की बात कहकर जनहित के मुद्दों को सामने लाने से रोकना संभव नहीं रहा है। इससे सरकारी काम–काज में पारदर्शिता आ रही है। तत्कालीन सरकार द्वारा 11 अक्तूबर 2005 को पारित यह अधिनियम देश के प्रत्येक नागरिक को सक्षम बनाता है कि वह सरकारी वित्त पोषित योजनाओं, परियोजनाओं अथवा संस्थाओं के बारे में पूरा ब्यौरा प्राप्त कर सके। मानव अधिकार से सम्बद्ध मामलों में तो सूचना के अधिकार की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उदाहरणार्थ जेलों में लम्बे समय से बंद विचाराधीन कैदियों और न्यायालयों में दीर्घकाल से लंबित मामलों में इस माध्यम से प्राप्त सूचनाओं से गुणात्मक सुधार लाया जा सकता है।

लोकतांत्रिक देश में संपूर्ण विकास की प्रक्रिया को लोगों की सीधी भागीदारी के ज़रिए उसे सचमुच लोकतांत्रिक बनाने के लिए जानने का

अधिकार अत्यन्त आवश्यक है। निर्वाचित प्रतिनिधियों पर अंकुश लगाने और उन्हें मतदाता के प्रति जवाबदेह बनाने के लिए यह अनिवार्य शर्त है। परन्तु इस जन–भागीदारी के लिए आवश्यक है कि आम जन को नीति–निर्धारण और क्रियान्वयन के विषय में सारी सूचनाएं मुहैया करायी जाएं। जनता द्वारा मांगे जाने पर ही सूचनाएं उपलब्ध न हों, अपितु लगातार जनता तक सूचनाएं पहुंचाते रहने का दायित्व सरकार ले। यह भी तथ्य है कि सूचना के अधिकार को वाणी और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की संवैधानिक गारंटी के अंतर्गत शामिल किया गया है जिसे उच्चतम न्यायालय के निर्णयों से मान्यता मिली है जिसमें न्यूज़ प्रिंट पर सरकारी नियंत्रण और अख़बारों के वितरण पर निषेध को चुनौती दी गई है। सुप्रीम कोर्ट ने इस आधार पर प्रतिबंधों को रद्द कर दिया था कि वे याचिकाकर्त्ताओं के अख़बार प्रकाशित करने और उसे स्वतंत्रतापूर्वक वितरित करने के अधिकार में हस्तक्षेप करते हैं जो कि उनके बोलने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार में सन्निहित है।

पर्यावरण संबंधी मुद्दों के संदर्भ में जानने के अधिकार की पुनः अभिपुष्टि की गई जिसका लोगों के अस्तित्व पर प्रभाव था। उदाहरण के लिए विभिन्न मामलों में भवन निर्माण के लिए आवेदनों और संबद्ध योजनाओं के निरीक्षण के अधिकार और नगर पालिका के सफाई कार्यक्रम के बारे में सूचना के अधिकार की अभिपुष्टि की गई। पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन संबंधी शर्तें ऐसी किसी परियोजना की कार्यान्वयन संबंधी सार के जन सुनवाई और प्रकाशन की प्रक्रिया की अनुमति देते हैं, जो पर्यावरण को प्रभावित करते हैं।

सूचना का सीमित प्रवाह 2 कारणों से है – साक्षरता का निम्न स्तर और प्रभावी संचार उपकरणों और प्रक्रियाओं में बुनियाद की कमी है। व्यक्तियों, सामाजिक संगठनों तथा सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं का भी दायित्व है कि व्यवस्था में इस अधिकार के माध्यम से सुधार के लिए अपने स्तर पर भी प्रयास करते रहें।

यदि मानवाधिकारों का हनन अन्याय है तो शोषित को इस अन्याय का अहसास होना चाहिए, ताकि वह न्याय की गुहार लगा सके। न्याय की गुहार के लिए न्याय प्रक्रिया का आम जनता की भाषा में सुलभ होना

आवश्यक है। दुर्भाग्यवश जो न्याय प्रणाली हमने भारत में विकसित की है, उसका आधार लोकभाषा नहीं बन सकी। इसके पीछे कुछ व्यावहारिक समस्याएँ भी रही हैं लेकिन अगर संकल्प और अध्यवसाय हो तो ऐसी कोई समस्या नहीं है जिसका निराकरण न हो सके। इस दिशा में प्रयास की आवश्यकता है कि आम लोगों को उनकी भाषा में न्याय उपलब्ध हो सके।

किसी भी अधिकार की अवधारणा उसके साथ आने वाले दायित्वों के अभाव में नहीं की जा सकती। प्रत्येक भारतीय नागरिक को सरकारी या सरकार द्वारा पोषित संस्थाओं की ख़बर लेने का हक इस अधिकार ने दिया है। दूसरों शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यह क़ानून नागरिक तथा आम आदमी से भी यह अपेक्षा रखता है कि वह इस संबंध में अपनी जागरूकता क़ायम रखें। मेरी दृष्टि में उपयुक्त बातें ही इस क़ानून की गरिमा को बचाए रखने में सफल हो सकेगी ।

***

> सच्ची जिन्दगी वही है जहाँ हम अपने लिए नहीं, सबके लिए जीते हैं।
>
> प्रेमचन्द

सूचना का अधिकार, मानव अधिकार तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य

न्यायमूर्ति आर. सी. लाहोटी*

21वीं सदी का समाज इस बात को स्वीकार करने लगा है कि सूचना का अधिकार भी मानव अधिकार का दर्जा रखता है और आज का परिप्रेक्ष्य अर्थात् आज का परिदृश्य जिसका प्रतिबिम्ब लगभग प्रतिदिन समाचार पत्रों में देखने को मिल रहा है, उसका समाधान सूचना के अधिकार में है। सूचना का अधिकार ऐसा मौलिक, आधारभूत और अपरिहार्य अधिकार है जिसके अभाव में न तो मनुष्य का व्यक्तित्व पूरी तरह विकसित हो सकता है और न ही उसके अन्य मानव अधिकारों का संरक्षण और प्रभावी प्रयोग हो सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ को श्रेय जाता है कि उसने इस अधिकार की ओर संपूर्ण विश्व का ध्यान आकर्षित किया और इस अधिकार की स्थापना के लिए विश्वव्यापी आंदोलन का सूत्रपात किया। 1946 में संयुक्त राष्ट्र संघ की साधारण सभा ने यह सर्वसम्मत प्रस्ताव पारित कर उद्घोषित कर दिया था कि सूचना की स्वतंत्रता एक मूलभूत मानव अधिकार है और यह उन सभी प्रकार की स्वतंत्रताओं की कसौटी है जिनके प्रति संयुक्त राष्ट्र प्रतिबद्ध है।

जिस सूचना के अधिकार के प्रति संयुक्त राष्ट्र संघ प्रतिबद्ध है, उसी आदर्श की प्राप्ति के लिए भारत का राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग भी कटिबद्ध है। आयोग का संकल्प है कि उस आदर्श की मंज़िल तक भारत के प्रत्येक मनुष्य को पहुँचाने के प्रयास में अपनी भूमिका सक्रिय होकर निभायेगा। यह जानकर और देखकर एक सुखद अनुभूति होती है कि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग एक ऐसी सशक्त संस्था बनकर उभरी है जो केवल नागरिकों के अधिकारों का ही संरक्षण नहीं करती अपितु वह मानव के उन अधिकारों का भी संरक्षण करती है जो नैसर्गिक हैं, शाश्वत हैं, स्वयंभूत हैं, अनिवार्य हैं और अपरिहार्य हैं।

---

* पूर्व मुख्य न्यायाधीश, सर्वोच्च न्यायालय, भारत

* "सूचना का अधिकार, मानव अधिकार तथा वर्तमान परिप्रेक्ष्य" विषय पर आयोग द्वारा आयोजित संगोष्ठी के अवसर पर प्रस्तुत मुख्य भाषण।

मेरे मन में यह विचार उठता है कि मानव अधिकार, सूचना का अधिकार और यह संगोष्ठी–जिसका आयोजन कर रहा है राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग। क्यों? क्यों यह आयोग बनाना पड़ा? मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 की उद्देशिका कहती है – मानव अधिकार के बेहतर संरक्षण के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग तथा उससे संबंधित आनुसांगिक विषयों को समाविष्ट करने हेतु अधिनियम। इसका अर्थ यह हुआ कि इस आयोग की स्थापना मानव अधिकार के 'बेहतर संरक्षण' के लिए हुई है। लेकिन 'बेहतर संरक्षण' तो तब हो जबकि इस आयोग के बिना 'संरक्षण' हो रहा हो। यह आयोग तो मानव अधिकारों के 'संरक्षण' के लिए है; 'बेहतर संरक्षण' की बात तो अलहदा है। मेरे मन में एक प्रश्न उठता है कि प्रजातंत्र की यह कैसी विडंबना है कि जिन्हें देश के लोग चुनते हैं, जिनके हाथों में सत्ता सौंपते हैं और जिन्हें शासक बनाकर स्वयं को 5 वर्ष के लिए शासित बना लेते हैं, उन्हीं के द्‌वारा संचालित और नियंत्रित शासन और सत्ता के अंग मानवाधिकारों का सर्वाधिक उल्लंघन करते हैं। चुनाव के पहले मतदाता सशक्त होता है और संभावित जन–प्रतिनिधि विनम्र। चुनाव होते ही मतदाता याचक हो जाता है और जनप्रतिनिधि निश्चिन्त प्रजातंत्र में मानव अधिकारों का हनन होते देखकर ऐसे परिदृश्य पर लखनऊ के शायर कृष्ण बिहारी 'नूर' ने बड़ी पैनी और माकूल टिप्पणी की है। दो पंक्तियों में वे मतदाता की ओर से लिखते हैं –

मैं जिसके हाथों में एक फूल देके आया था,
उसी के हाथ का पत्थर मेरी तलाश में हैं।

इस बदले हुए परिदृश्य में मानव अधिकारों की रक्षा करती हैं न्यायालय, निर्वाचन आयोग, मानव अधिकार आयोग जैसी संस्थाएं, जिनमें चुने हुए प्रतिनिधि नहीं होते। ये प्रजातंत्र की विडम्बना है कि जो चुने हुए प्रतिनिधि हैं, वे मानव अधिकारों का उल्लंघन करते हैं और जिन्हें मतदाताओं ने चुना नहीं है वे मानव अधिकारों का संरक्षण करते हैं, अथवा जैसा कि इस विधान की उद्देशिका कहती है कि श्रेष्ठतर संरक्षण करते हैं। प्रजातंत्र में जहां अज्ञान का अंधकार होता है, वहीं मानवाधिकारों का सबसे अधिक उल्लंघन होता है। सूचना का अधिकार वह दीपक है जो जागृत होते ही ज्ञान के आलोक का आह्‌वान करता है। ज्ञान का आलोक जिसकी किरणों में अज्ञान

से प्रसूत अन्याय के अभिशाप को आमूल नष्ट कर देने की क्षमता है और तदंतर राष्ट्रपिता बापू का भजन – उनकी इस पंक्ति का भाव – राष्ट्र और प्राणी मात्र से प्रेम रखने वाले प्रत्येक भारतवासी के मन में उदित होकर नर्तन करने लगता है–

"वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाने रे।"

यही मानव अधिकार है, मानव आधिकार की नींव है, मानव का मानव के प्रति कर्तत्तव्य का आह्वान है।

सूचना का अधिकार महत्वपूर्ण है। प्रजातंत्र के लिए बेशकीमती है। उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 19 और 21 की व्याख्या करते हुए यह कहा है कि मनुष्य का ससम्मान सार्थक जीवन जीने के लिए सूचना प्राप्त करने और सूचना देने का अधिकार होना चाहिए। मानव अधिकारों का हमारे समाज में उल्लंघन होता है किन्तु इस पर चिंता की नहीं, चिंतन की आवश्यकता है। प्रजातंत्र में सूचना के अधिकार का उल्लंघन होना अवांछनीय है। मध्य प्रदेश के एक कवि हुए हैं – बालकृष्ण बैरागी। वह मेरे स्वर्गीय पिताजी के मित्र रहे हैं। मेरे पिताजी अब नहीं रहे किन्तु बैरागी जी ईश्वर की कृपा से अभी हैं, स्वस्थ हैं। ये दोनों राजनीति के उस ज़माने में सक्रिय कार्यकत रहे हैं, जिस ज़माने में राजनीति समाज की सेवा के भाव से की जाती थी। बैरागी जी ने एक बड़ी अच्छी रचना लिखी है। लम्बी रचना है – "साधना का नया आयाम"। जिस पुस्तक में यह रचना संग्रहीत है उस पुस्तक का नाम है "आलोक का अट्टहास"। इस लम्बी रचना के केवल तीन पद मैं आपके सामने पढ़ना चाहता हूँ। सूचना के अधिकार की महत्ता इससे प्रकट होगी। बैरागी जी लिखते हैं – हम भारतवासी क्या थे, क्या हो गए। हमारे शासक क्या होने चाहिए थे, क्या हो गए। वे लिखते हैं –

सूर्योपासक पुरखों की
संतानों का यह जुलूस

अजीब है।
शनैः शनैः अभ्यस्त

हो गए हैं ये अंधेरे के।

प्रत्येक चाहता है कि
या तो सूरज रहे
उसकी ही मुट्ठी में क़ैद
या फिर उगे ही नहीं।

ये वादा करते हैं
सूरज उगाने का
पर उगाते हैं अंधेरा
और वह भी घना।

सूर्योपासक अंधेरे के अभ्यस्त हो गए हैं। वे नहीं जानते कि जीवन की सार्थकता रोशनी में और जीने में है। बैरागी जी की रचना इस सत्य का एक शब्द चित्र है, बहुत सटीक। सूचना का अधिकार, अंधकार में जीने के अभ्यस्त हो चुके लोगों के बीच प्रकाश के आगमन को निमंत्रण है।

कोई भी अधिकार पूर्ति के लिए कर्त्तव्य भी चाहता है। हम सभी का कर्त्तव्य है कि इस अधिकार के अस्तित्व, उपलब्धता और प्रभावी रूप से प्रयोग करने की प्रक्रिया से उन सभी को अवगत कराएं, जिन्हें उसकी सर्वाधिक आवश्यकता है। सूचना के अधिकार का प्रचार–प्रसार होना चाहिए। दीपावली पर पूजा के थाल में रखे दीपक उठाकर घर के हर कोने में रखने पर ही दीप मालिका का प्रकाश अंधेरे कोनों तक प्रकाश की किरणें पहुंचाता है। आसमान में उगे सूरज की रोशनी घर में तब तक प्रवेश नहीं कर सकती, जब तक दरवाज़े और खिड़कियाँ खोल न दी जाएं। यही काम आपको और हम सबको करना है।

सूचना का अधिकार भारत की जनता को सहज ही प्राप्त नहीं हो गया है। इसके लिए अनेकों ने कड़ा संघर्ष किया है। हमें सतर्क रहना है कि इस अधिकार का सिथलीकरण न होने पाए। मानव अधिकारों के प्रति हमारा विश्वास और आदर का भाव होना चाहिए। अपने अधिकारों के प्रति और अन्य नागरिकों, अन्य मानवों के अधिकारों के प्रति भी। चाहे उस अधिकार के निर्वहन के लिए हमें अपने अधिकारों का परित्याग कर अपने कर्त्तव्य का

पालन करना पड़े। हमें विश्वास होना चाहिए, अति विश्वास होना चाहिए कि यदि हम सक्रिय होंगे तो इस देश के वासियों को अवश्य मानव अधिकार मिलेंगे और उनका संरक्षण हो सकेगा।

यक़ीं के नूर से रोशन हों रास्ते अपने
ये वो चिराग़ है कि तूफ़ां जिसे बुझा न सका

***

आजीवन कारावास और समता का मूल अधिकार

चमन लाल*

25 फरवरी 2006 को श्री पी.सी. शर्मा, माननीय सदस्य, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने केन्द्रीय कारागार, बंगलूरु का दौरा किया था। आयोग के हिरासतीय न्याय प्रकोष्ठ के मुख्य समन्वयकर्त्ता की हैसियत से मैं भी उनके साथ था। जेल के महिला अनुभाग में हमने विचारणाधीन और दोषसिद्ध बंदियों से अलग–अलग बात की। हत्या के मामले में आजीवन कारावास भोगती हुई एक महिला ने शिकायत की कि उसके माता–पिता ने उसका परित्याग कर दिया है और वह अपने बच्चों से मिलने के अधिकार से वंचित हो गई है। महिला की उम्र लगभग 30 वर्ष थी। अन्य महिला बंदियों की तुलना में वह सुन्दर लग रही थी, उसने जेल की पोशाक सुरूचिपूर्ण ढंग से प्रेस करके पहनी हुई थी। महिला बंदियों द्वारा संचालित जेल बेकरी के बारे में एक अध्यापिका के लहजे में बोलती हुई वह महिला अपनी स्थिति से पूर्णतः संतुष्ट लग रही थी। उसने कई अन्य बंदियों की तरह अपने जुर्म से इंकार नहीं किया और न यह कहा कि सज़ा के मामले में उसके साथ कोई बेईंसाफ़ी हुई है। बाद में जेल अधीक्षक से पता चला कि उस महिला ने अपने पति की हत्या की थी। अपने प्रेमी की मदद से जो उसी जेल के पुरुष अनुभाग में आजीवन कारावास काट रहा था। मैंने माननीय सदस्य को उस महिला की असामान्यतः सुखी स्थिति का रहस्य बताकर हतप्रभ कर दिया। वह महिला आश्वस्त थी कि कर्नाटक राज्य की नीति के अनुसार उसकी उम्र कैद की अवधि मात्र 5 वर्ष थी जिसमें से 18 माह का समय वह तब तक बिता चुकी थी। कैद पूरी करने के बाद वह अपने प्रेमी के साथ एक नई ज़िंदगी शुरू कर सकती थी। मेरी बात सुनकर माननीय सदस्य को याद आया कि अपनी शिकायत दर्ज कराते समय उस महिला की आवाज में किसी ख़ास दर्द की झलक नहीं थी। जो बात हम दोनों को बहुत विचित्र तथा निदनीय भी लगी वह थी अपने जघन्य अपराध के बारे में उस महिला की पश्चाताप शून्यता जैसे उसे अपने किए पर किसी तरह का भी मलाल नहीं था।

---

* पूर्व विशेष संपर्ककर्त्ता, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग

हमारे देश के क़ानून में आजीवन कारावास के प्रावधान का जिस ढंग से अलग–अलग राज्यों में अमल हो रहा है उससे नहीं लगता कि संविधान द्वारा दिया गया विधि के समक्ष समता और विधियों के समान संरक्षण का मूल अधिकार देश के सभी नागरिकों को वास्तव में प्राप्त है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में अपनी 11 वर्ष की अवैतनिक सेवा के दौरान मैंने देश के समस्त प्रमुख राज्यों की जेलों का अध्ययन किया है तथा आजीवन कारावास की यथार्थ अवधि विभिन्न राज्यों में अलग–अलग पाई है।

पहले यह जान लिया जाए कि आजीवन कारावास का कानूनी उपबंध है क्या? भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने इस विषय को यह कह कर निर्विवादित रूप से तय कर दिया है कि आजीवन कारावास के वही मायने हैं जो यह दो शब्द बताते हैं अर्थात् जीवन की आख़िरी सांस तक की क़ैद। किन्तु अधिकतर लोग जानते हैं कि आजीवन कारावास का दंड पाने वाले दोषसिद्ध व्यक्ति सारी उम्र जेल में नहीं बिताते हैं। आम धारणा के अनुसार 14 वर्ष की क़ैद पूरी होने पर वे मुक्त कर दिए जाते हैं।

आजीवन कारावास भोग रहे व्यक्ति की जेल से रिहाई दंड की समाप्ति के फलस्वरूप मिलने वाली रिहाई नहीं है। इस रिहाई का आधार दंड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 432 में दिए गए दंडादेशों के निलंबन (सस्पेंशन), परिहार (रेमिशन) तथा लघुकरण (कम्प्यूटेशन) का प्रावधान है। धारा 433 में दंडादेशों के लघुकरण की शक्तियां राज्य सरकार को दी गई हैं। 18 दिसम्बर 1978 में एक संशोधन के फलस्वरूप दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 433 ए का समावेश किया गया। जिसके फलस्वरूप ही आम धारणा वाली 14 साल की वास्तविक क़ैद की शर्त लागू हुई। इससे पूर्व राज्य सरकारें आजीवन कारावास की अवधि किसी भी हद तक कम कर सकती थीं। 18 दिसम्बर, 1978 के संशोधन के बाद धारा 433 ए के अधीन जब किसी व्यक्ति को ऐसे अपराध के लिए आजीवन कारावास का दंड दिया गया है जिसके लिए मृत्युदंड भी विधि द्वारा उपबंधित दंडों में से एक है, या धारा 433 के अधीन किसी व्यक्ति के लिए मृत्युदंड का आजीवन कारावास के रूप में लघुकरण किया गया है। वहां ऐसा व्यक्ति कारावास से तब तक नहीं छोड़ा जाएगा जब तक कि उसने 14 वर्ष का कारावास पूरा न कर लिया हो।

दंडादेशों के लघुकरण की शक्तियां संविधान के अनुच्छेद 72 के अधीन राष्ट्रपति तथा अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल को दी गई हैं। राष्ट्रपति तथा राज्यपाल को दी गई शक्ति एक अत्यांतिक शक्ति है जिस पर कोई शर्त या बंदिश नहीं लगाई जा सकती। राष्ट्रपति तथा राज्यपाल अपने क्षेत्र में आजीवन कारावास की अवधि का किसी भी हद तक लघुकरण करने के लिए सक्षम हैं। यह कहते हुए कि संविधान के अनुच्छेद 72 तथा 161 में निहित शक्तियां अत्यांतिक हैं तथा उन पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433 ए भी बंदिश नहीं लगा सकती, सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर भी ज़ोर दिया है कि इन शक्तियों का अविवेकपूर्ण उपयोग या दुरुपयोग रोकने के लिए आवश्यक है कि इस विषय पर मार्गदर्शी नियम बनाए जाएं। सर्वोच्च न्यायालय के मत में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 433 ए में निहित सिद्धांत भी एक उचित दिशा निर्देश बन सकता है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जघन्य अपराधों से दोषीसिद्ध व्यक्तियों को दिए गए आजीवन कारावास के दंड को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से लगाई गई 14 वर्ष की शर्त की समुचित एवं पर्याप्त कारणों के बिना अवहेलना कानून की मंशा के ख़िलाफ है। इस बात में तो तनिक भी संदेह नहीं होना चाहिए कि दण्ड प्रक्रिया संहिता में राज्य सरकार को दी गई शक्तियों के होते हुए संविधान में राष्ट्रपति तथा राज्यपाल को प्रदत्त शक्तियों का उपयोग एक रुटीन न बनने देकर बहुत असामान्य परिस्थितियों में ही काम में लाना चाहिए।

देश के कुछ मुख्य राज्यों में आजीवन कारावास के क़ैदियों की समयपूर्व मुक्ति (प्रीमेच्युर रिलीज़) दण्डादेशों के लघुकरण की वास्तविक तस्वीर नीचे दी जा रही है।

केन्द्र शासित प्रदेश

आयोग ने दिल्ली तथा चंडीगढ़ की स्थिति का अध्ययन किया है। चूंकि केन्द्र शासित प्रदेशों में संविधान में प्रदत्त दण्डादेशों के लघुकरण की शक्तियां राष्ट्रपति को दी गई तथा उपराज्यपाल को यह शक्ति उपलब्ध नहीं है, संविधान के अनुच्छेद 72 का उपयोग न के बराबर है। आजीवन कारावासियों को दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अधीन धारा 433 ए द्वारा लगाई गई शर्त का पालन करते हुए समयपूर्व मुक्ति प्रदान की जाती है। स्पष्ट है कि कोई भी उम्र क़ैदी जिसका

मामला धारा 433 ए की पकड़ में आता है, कम से कम 14 साल की कैद काटे बिना जेल से नहीं छूट सकता।

पंजाब

आजीवन कारावास के दोष सिद्ध व्यक्तियों की रिहाई पंजाब जेल नियमावली के नियम 431 द्वारा नियंत्रित होती है। यह भी देखा गया है कि अधिकतर आदेश अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल की शक्तियों से जारी किए जाते हैं। 14 साल की वास्तविक (एक्चुअल) क़ैद उन्हीं बंदियों के लिए अनिवार्य है जो मृत्युदण्ड को आजीवन कारावास में परिवर्तन का लाभ उठा चुके हों। उनके लिए वास्तविक न्यूनतम कैद 14 वर्ष से बढ़ाकर 20 वर्ष की गई है। शेष के लिए उनके अपराध की गंभीरता तथा उसके संपादन में बरती गई क्रूरता को देखते हुए 8 से 14 वर्ष की वास्तविक और 14 वर्ष से 20 वर्ष की कुल परिहार समेत क़ैद तय की गई है। उदाहरणतः बलात्कार सहित हत्या, दहेज हत्या, बाल हत्या, डकैती और हत्या जैसे जघन्य अपराधों के दोष सिद्ध आजीवन कारावासी को समय पूर्व रिहायी की पात्रता हासिल करने के लिए 12 वर्ष की वास्तविक तथा 18 वर्ष की परिहार मिलाकर कुल क़ैद आवश्यक है। जिनके मामले धारा 433 ए की पकड़ में आने के बावजूद गंभीर नहीं है उनको केवल 8 वर्ष की वास्तविक और 14 वर्ष की परिहार समेत कुल कैद भोगना आवश्यक है।

वर्ष 2001 में पटियाला केन्द्रीय कारागार से 10 आजीवन कारावास के दोषसिद्ध बंदी छोड़े गए थे। उनमें से 5 ने 10 वर्ष का कारावास भी पूरा नहीं किया था। 2 की क़ैद की अवधि 7 साल से भी कम थी। वे दोनों भाई थे जिन्होंने उम्रक़ैद के नाम पर केवल 6 साल 11 महीने और 3 दिन का समय जेल में बिता कर समयपूर्व रिहायी हासिल कर ली थी।

हरियाणा

जेल विभाग के एक परिपत्र दिनांक 12.4.2002 द्वारा आजीवन कारावास के दोषसिद्ध बंदियों का उनके अपराध की गंभीरता तथा क्रूरता के आधार पर श्रेणीकरण किया गया है। 14 वर्ष की वास्तविक और 20 से 25 वर्ष तक की परिहार मिलाकर कुल क़ैद आवश्यक बनाई गई है। स्पष्ट है कि इन निर्देशों

का संबंध राज्य सरकार की दण्ड प्रक्रिया संहिता में वर्णित शक्तियों से है। हक़ीकत यह है कि अधिकतर आदेश अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल की शक्तियों में किए जाते हैं। करनाल जेल में ही मैंने जुलाई 2002 में परीक्षण पर पाया कि 1.1.1999 से 8.7.2002 की अवधि में 14 आजीवन कारावासी समयपूर्व मुक्त किए गए थे। सभी हत्या के अपराध के दोषसिद्ध थे जिन पर धारा 433 ए का 14 वर्ष की न्यूनतम कैद का प्रावधान लगता है। 14 में से केवल एक ने ही 14 वर्ष की .कैद पूरी की थी। शेष 13 में से 2 की कैद 10 साल से भी कम थी। स्पष्ट है यह आदेश अनुच्छेद 161 के तहत किए गए थे।

महाराष्ट्र

12 जून 2003 को आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष, न्यायमूर्ति ए.एस आनन्द के साथ मैंने यर्वदा केन्द्रीय कारागार, पुणे के दौरे के दौरान स्थिति का परीक्षण किया था। यह प्रशंसनीय था कि लगभग सभी आदेश दण्ड प्रक्रिया संहिता में दी गई राज्य सरकार की शक्तियों में किए जाते हैं। धारा 433 ए के प्रावधान पर अमल के उद्देश्य से 1992 में जारी किए गए दिशा – निर्देशों द्वारा आजीवन कारावास से दोषसिद्ध बंदियों को उनके अपराध की गंभीरता तथा क्रूरता के आधार पर 5 श्रेणियों में बाँटा गया है। वास्तविक क़ैद की अवधि हर श्रेणी के लिए धारा 433 ए के अनुरूप 14 वर्ष रखी गई है। कुल क़ैद परिहार मिलाकर कम से कम 22 वर्ष तथा ज़्यादा से ज़्यादा 30 वर्ष निर्धारित की गई है। पहली श्रेणी में वे बंदी आते हैं जिनका कोई आपराधिक इतिहास नहीं है तथा जिन्होंने अपराध बिना किसी पूर्व नियोजन के क्षण के आवेश में किया हो। उनके लिए समय पूर्व रिहाई की शर्त 14 वर्ष वास्तविक तथा 22 वर्ष कुल क़ैद है। अंतिम श्रेणी में वे क़ैदी शामिल किए गए हैं जिनको मृत्युदण्ड मिला था जो बाद में आजीवन कारावास में बदला गया। उनका कुल कैदी परिहार समेत 30 वर्ष होनी आवश्यक है।

22 से 30 वर्ष की कुल क़ैद परिहार मिलाकर एक सख्त प्रावधान की सूचक है। चूंकि उम्र क़ैद की पूरी अवधि में अधिक से अधिक परिहार 6 वर्ष, 8 माह का (20 वर्ष का 33 प्रतिशत) ही अर्जित किया जा सकता है महाराष्ट्र में अधिकतर उम्र क़ैदियों को 18 से अधिक वर्ष की वास्तविक क़ैद भोगनी पड़ती है।

मैंने रिहाई के लिए योग्य पाए गए 25 बन्दियों के विवरण का अध्ययन किया था। उनमें से केवल 2 परिहार मिलाकर 22 वर्ष में घटने वाले थे। 14 को छूटते समय तक 24 साल हो जाने थे। एक बंदी को 26 साल की कैद पर छूटना था।

मध्य प्रदेश

छत्तीसगढ़

दोनों राज्यों में आजीवन कारावास के दोष सिद्धि बंदियों की समय पूर्व रिहाई प्रति वर्ष 15 अगस्त और 26 जनवरी के अवसर पर की जाती है। आदेश दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुरूप ही जारी किए जाते हैं। अनुच्छेद 161 का विवेकपूर्ण उपयोग वृद्ध बंदियों (65 वर्ष से ऊपर) तथा अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस (8 मार्च) के अवसर पर महिला बंदियों को छोड़ने के लिए किया जाता है। इस विशेष प्रावधान का प्रयोग क़ानून की मंशा के मुताबिक़ कम से कम किया जाता है। रायपुर सेंट्रल जेल में एक आजीवन कारावासी ने मुझसे शिकायत की थी 19 वर्ष की वास्तविक क़ैद भोग लेने पर भी वह जेल में था जब कि उसके साथ के अन्य सभी उम्र क़ैदी 14 वर्ष पूरा करने के बाद छूट गए थे। मैंने उसकी फ़ाइल का अध्ययन करने पर पाया कि वह महाराष्ट्र के चन्द्रपुर जिले से 3 फ़रवरी 1992 को दण्डित हुआ था तथा 24.6.97 को नागपुर सेंट्रल जेल से ट्रांसफर पर रायपुर सेंट्रल जेल में आया था। उसकी समय पूर्व मुक्ति के आदेश महाराष्ट्र सरकार द्वारा किए जाने हैं। जब उसका प्रकरण महाराष्ट्र सरकार को भेजा गया तो वहां से यह जवाब आया कि यद्यपि उसने 14 वर्ष की क़ैद पूरी कर ली है, वह परिहार मिलाकर 24 साल की क़ैद पूरी होने पर ही छोड़ा जाएगा। उसके अर्जित परिहार को देखते हुए उसे जेल में 5 साल और बिताने थे।

बिहार

झारखण्ड

दोनों राज्यों में आजीवन कारावास की अवधि 20 वर्ष मानकर हर उम्र क़ैदी को '20 साला' कहा जाता है। आयोग के हस्तक्षेप से पहले यहां समयपूर्व मुक्ति की धारणा से कोई परिचित नहीं था। 20 साल के बाद की रिहाई के

आदेश भी औपचारिक ढ़ंग से राज्य सरकार को जारी करने हैं इसका भी किसी को इल्म नहीं था। कुछ वारन्ट पर तो 20 साल की सज़ा अंकित देखी गई जिसकी कोई वैधता नहीं हो सकती। यह उल्लेखनीय है कि इन प्रदेशों की जेलों में मैंने अनुच्छेद 161 के उपयोग का कोई मामला नहीं देखा।

हिमाचल प्रदेश

आजीवन कारावास के दोष सिद्ध बंदियों की समय पूर्व रिहाई दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुरूप धारा 433 ए की बंदिश का शक्ति से पालन करते हुए की जाती है। अनुच्छेद 161 का उपयोग न के तुल्य है। केवल उन बंदियों को जिनका मृत्यु दण्ड आजीवन कारावास में परिवर्तित हुआ है, 14 वर्ष के स्थान पर 20 वर्ष की वास्तविक क़ैद भोगनी पड़ती है। इस श्रेणी के वे क़ैदी जिनका जेल का रिकार्ड उत्तम पाया गया हो, 14 वर्ष की वास्तविक तथा परिहार मिलाकर 20 साल की कुल क़ैद पर छोड़े जा सकते हैं। इस विवेक के दुरूपयोग की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता।

पश्चिम बंगाल

इस राज्य में जेलों को 'सुधार गृह' का नया नाम दिया गया है जिनका नियंत्रण पश्चिम बंगाल करेक्शनल सर्विसिस एक्ट 1992 के द्वारा होता है। आजीवन कारावास से समय पूर्व मुक्ति दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुरूप होती है तथा संविधान के अनुच्छेद 161 का उपयोग बहुत कम किया जाता है। निर्धारित प्रणाली के अनुसार पात्रता अर्जित करने वाले हर बंदी का प्रकरण 14 वर्ष की क़ैद की समाप्ति के 7 दिन के भीतर महानिरीक्षक (जेल) को भेज दिया जाता है। महानिरीक्षक (जेल) उसे विधि विभाग को भेजते हैं यहां अभी भी कार्रवाई संबंधित ज़िलाधीश और ज़िला पुलिस अधीक्षक से अनुशंसा प्राप्त करने की बात की जाती है। यह प्रावधान दण्ड प्रक्रिया संहिता के बाहर का है। पुलिस तथा प्रशासन के आम राजनीतिकरण को देखते हुए पूरी क़ैद काट लेने के बाद भी बंदी की मुक्ति को ज़िला अधिकारियों की सिफ़ारिश पर छोड़ देना कहां तक न्यायोचित है इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि पश्चिम बंगाल की जेलों में 14 वर्ष से कहीं अधिक की कैद काट चुके बंदी बड़ी संख्या में मिलेंगे। मैंने नवंबर 2003 में केवल प्रेज़िडेन्सी करेक्शनल होम में भी इस स्थिति का परीक्षण किया था। उस समय वहां 16 क़ैदी ऐसे थे जो 15

साल से अधिक क़ैद काट चुके थे। उसमें से 7 ऐसे थे जिन्हें 20 वर्ष से अधिक समय जेल में हो गया था। क़ैदियों की रिहाई का निर्णय लेने की रफ़्तार का अंदाजा लगाइये। इस जेल में मेरे दौरे से पिछले 3 वर्षों की अवधि में केवल 3 उम्र कैदी छोड़े गए थे–एक 20 वर्ष, एक 22 वर्ष और एक 14 वर्ष की वास्तविक क़ैद के बाद। पात्रता अर्जित कर लेने के बाद भी केवल वही कैदी समय पूर्व मुक्ति का लाभ उठा सकते हैं जिनके घर वाले हर संभव उचित अनुचित साधन का इस्तेमाल कर जिला अधिकारियों की अनुकूल सिफ़ारिश का जुगाड़ कर लेते हैं।

आंध्र प्रदेश

समय पूर्व मुक्ति के लगभग सभी आदेश केवल अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल की शक्ति द्वारा जारी किए जाते हैं। केवल 7 वर्ष की वास्तविक और 10 वर्ष की कुल कैद परिहार मिलाकर शर्त रखी गई है। 65 वर्ष से ऊपर के कैदियों के लिए इस उदार प्रावधान में और छूट देकर 5 वर्ष की वास्तविक और 7 वर्ष की कुल कैद निर्धारित की गई है, मुक्ति के आदेश स्वतंत्रता दिवस तथा गणतंत्र दिवस के अवसर पर निकाले जाते हैं। दिसंबर 2004 में माननीय सदस्य न्यायमूर्ति भास्कर राव के साथ मैंने केन्द्रीय कारागार चर्लनपल्ली दौरे के समय इस स्थिति के परीक्षण पर पाया कि 15 अगस्त 2004 को प्रदेश में 602 आजीवन कारावासी मुक्त किए गए थे। इनमें से 72 उस जेल के थे वहां हम आंध्र प्रदेश का कोई भी ऐसा बंदी नहीं मिला जिसने आजीवन कारावास के 10 वर्ष पूरे कर लिए हों। वहीं महाराष्ट्र के कोर्ट से दंडित होकर आए 2 कैदी मिले जो 14 वर्ष की कैद पूरी कर चुके थे। एक को तो 19 वर्ष 2 माह का समय हो गया था। उनके प्रकरण महाराष्ट्र सरकार पर छोड़े गए हैं। तय था उन दोनो व्यक्तियों को उसी जेल में अभी कई साल की यातना सहनी थी।

उल्लेखनीय है कि कुछ दिन पहले आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा अपनाई जा रही नीति के विरोध में सर्वोच्च न्यायालय में एक लोकहित याचिका दाखिल की गई है। जो विचाराधीन है।

केरल

समय पूर्व मुक्ति के दोनों प्रावधानों का – दण्ड प्रक्रिया की धारा 432/433/433 ए तथा संविधान के अनुच्छेद 161 का – इस्तेमाल

किया जाता है। दोनों के लिए अलग समितियां गठित हैं। प्रिज़न एडवाईज़री बोर्ड 14 वर्ष की वास्तविक क़ैद पूरी कर लेने वाले बंदियों के प्रकरणों पर विचार करता है। स्टेट प्रिज़न रिव्यू कमेटी अनुच्छेद 161 के तहत छोड़े जाने वाले कैदियों के मामले देखती है जिनको 8 साल की वास्तविक और परिहार मिलाकर 10 साल की कुल क़ैद काटनी आवश्यक है। नवम्बर 2003 में मैंने माननीय सदस्य न्यायमूर्ति पाटिल के साथ स्थिति का परीक्षण किया था। चूंकि प्रिज़न एडवाईज़री बोर्ड प्रदेश की तीन सेन्ट्रल जेल, एक महिला जेल और एक खुली जेल के लिए अलग–अलग बैठकें करता है, समय पूर्व मुक्ति की पात्रता अर्जित करने के बाद भी रिहाई का लाभ पाने वाले कैदी एक समय पर नहीं छूट पाते। एक ही राज्य में एकरूपता का यह अभाव समान अधिकार के पात्रों को असमान बना देता है।

कर्नाटक

समयपूर्व मुक्ति के लगभग सभी आदेश अनुच्छेद 161 के तहत स्वतंत्रता दिवस तथा गणतंत्र दिवस जैसे विशेष अवसरों पर जारी होते हैं। आजीवन कारावास के पुरुष वर्ग के लिए 10 वर्ष और महिला वर्ग के लिए 5 वर्ष की वास्तविक क़ैद की शर्त रखी गई है। 18 दिसम्बर 1978 को लाई गई धारा 433 ए के प्रावधान को पूर्णतः निष्क्रिय कर दिया लगता है। फरवरी 2006 में माननीय सदस्य श्री पी.सी. शर्मा के साथ केन्द्रीय कारागार, बंगलूरु में मैंने स्थिति का परीक्षण कर पाया कि उसी जेल से 26 जनवरी 2005, 15 अगस्त 2005 तथा 26 जनवरी 2006 के अवसर पर 64 उम्र कैदियों को समयपूर्व मुक्ति प्रदान की गई थी। उस समय हमें उस जेल में कर्नाटक का ऐसा एक भी आजीवन कारावासी नहीं मिला जिसे वहां 12 वर्ष से अधिक समय हो गया हो। यहां मिले एक भूतपूर्व सैनिक का प्रकरण सुनाने लायक़ है। उसे मार्शल लॉ द्वारा अगस्त 1992 में आजीवन कारावास का दण्ड देकर इस जेल में भेजा गया था। अगस्त 2002 में 10 वर्ष की अवधि पूरी होने पर अन्य क़ैदियों की तरह इसकी रिहाई का भी प्रस्ताव तैयार कर सहमति प्राप्त करने के लिए सेना मुख्यालय को भेजा गया। वहां से वही ज़वाब आया जो क़ानून ऐसे सभी प्रकरणों पर लागू होना चाहिए। सेना मुख्यालय के एज्यूकेट जनरल ने जवाब में लिखा कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 432 के अनुसार उस

भूतपूर्व सैनिक के प्रकरण पर 14 वर्ष की क़ैद पूरी होने के बाद ही विचार किया जा सकता है।

ऊपर के विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि एक ही देश में एक ही क़ानून और उसे लागू करने की एक ही प्रक्रिया होने के बावजूद आजीवन कारावास की वास्तविक अवधि एक न होकर विभिन्न राज्यों में अलग–अलग है। विषय की महत्ता को मानव अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में देखते हुए, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने आजीवन कारावास के मामले में एकरूपता लाने के उद्देश्य से 20 अक्टूबर 1999 को दिशा निर्देश जारी किए जिन्हें बाद में राज्यों से 'फ़ीड बैक' मिलने पर दिनांक 26 सितम्बर 2003 को संशोधित किया गया। समयपूर्व मुक्ति को नियंत्रित करने वाले इन संशोधित दिशा निर्देशों का सार निम्न प्रकार से है:

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 433 ए में आने वाले प्रत्येक बंदी के प्रकरण पर 14 वर्ष की वास्तविक कैद पूरी होने पर ही समय पूर्व मुक्ति के लिए विचार किया जाएगा।

समयपूर्व मुक्ति के प्रकरणों पर निर्णय लेते समय बंदी के अपराध की जघन्यता और उसके संपादन में बती गई क्रूरता को भी ध्यान में रखा जाएगा। इसके लिए क़ैदियों को 2 श्रेणियों में बांटा गया है। एक सामान्य श्रेणी तथा दूसरी जघन्य और क्रूर अपराधों की श्रेणी। दूसरी श्रेणी में वे कैदी आएंगे जो बलात्कार के साथ हत्या, तस्करी और आतंकवादी घटनाओं में हत्या, बाल हत्या, लोकसेवक की ड्यूटी पर हत्या जैसे गम्भीर अपराधो में दण्डित हुए हों या जिनके मृत्यु दण्ड को आजीवन कारावास में बदला गया हो।

पहली श्रेणी के बंदियों की मुक्ति के लिए 14 वर्ष की न्यूनतम वास्तविक और परिहार मिलाकर अधिकतम 20 साल की क़ैद आवश्यक होगी। दूसरी श्रेणी में न्यूनतम 14 वर्ष की वास्तविक और परिहार मिलाकर कुल 25 वर्ष की अधिकतम क़ैद निर्धारित की गई है।

धारा 433 ए के प्रावधान में न आने वाले आजीवन कारावास के बंदियों की समयपूर्व मुक्ति की शर्त 10 वर्ष की, वास्तविक और परिहार मिलाकर 14

वर्ष की कुल कैद होगी, इस श्रेणी में महिलाओं को अतिरिक्त रियायत देकर 7 वर्ष की वास्तविक तथा 10 वर्ष की कुल कैद निर्धारित की गई है।

वृद्ध, गंभीर रूप से रोग ग्रस्त तथा मरणासन्न कैदियों की समयपूर्व मुक्ति के लिए संविधान के अनुच्छेद 161 का उपयोग करना उचित तथा श्रेयस्कर होगा।

आयोग के दिशानिर्देशों के अनुपालन की सही स्थिति का मुझे ज्ञान नहीं है। जिन राज्यों में अनुच्छेद 161 का उपयोग सीमित तथा न्याययुक्त है और समय पूर्व मुक्ति के अधिकतर प्रकरण दण्ड प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों के अनुरूप तय किए जाते हैं। वहां आयोग के दिशानिर्देश लागू करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए । जिन राज्यों में अनुच्छेद 161 के विशेष प्रावधान का उदारता से या अंधाधुंध उपयोग हो रहा है वहां आयोग द्वारा दिखाया गया रास्ता अपनाने में आनाकानी संभावित है। कुछ भी हो, आयोग को अपने इन महत्वपूर्ण दिशानिर्देशों का अनुपालन सुनिश्चित करना चाहिए।

भारत के संविधान द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को समता का मूल अधिकार प्रदान किया गया है जो क़ानूनन बाध्यकारी है । समता से अभिप्राय है – विधि के समक्ष समता और विधियों का समान संरक्षण। आजीवन कारावास की वास्तविक अवधि का विभिन्न राज्यों में अलग–अलग होना समता के मूल अधिकार की खुली अवहेलना है। आशा की जाती है कि सर्वोच्च न्यायालय इस ज्वलन्त विषय पर शीघ्र अपना निर्णय देकर आजीवन कारावास भोग रहे बंदियों की समयपूर्व मुक्ति के मामले में पूरे देश में एकरूपता स्थापित कर मानव अधिकारों के एक संस्थागत उल्लंघन को समाप्त करेगा।

***

न्याय में देर करना, न्याय को अस्वीकार करना है।

लेडस्टोन

मानव अधिकारों का अंतरराष्ट्रीय प्ररिपेक्ष्य

प्रो. गिरीश्वर मिश्र*

मानव अधिकार वर्तमान सामाजिक संरचना के महत्वपूर्ण नियामक बन गए हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत प्रपत्रों में समस्त मानवता के हितों की रक्षा तथा संवर्धन का प्रावधान किया गया है परन्तु वे सर्वजन सुलभ नहीं हैं। अतः मानव अधिकारों की शिक्षा आवश्यक है। इसका महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि पिछली शताब्दी नरसंहार की दृष्टि से बड़ी भयावह रही है। भारतीय संविधान आरंभ से ही मानव – अधिकारों के प्रति सजग रहा है परन्तु कार्यान्वयन की दृष्टि से देश की उपलब्धि सीमित रही है। इन अधिकारों की अनदेखी करने से सामाजिक कल्याण के लक्ष्य को पाने में बाधा उपस्थित होती है। इस दृष्टि से मानव अधिकारों की चेतना और शिक्षा के लिए विशेष प्रयास अपेक्षित हैं।

वैसे तो मानव अधिकार सभ्य सुशिक्षित समाज की स्वाभाविक विशेषता है और इसलिए सर्वत्र स्वीकृत होने चाहिएं परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। आज भी न तो इन अधिकारों की उपस्थिति सार्वभौमिक हो सकी है और न इनके अनुपालन को ही पूरी तरह सुनिश्चित किया जा सका है। वस्तुतः विभिन्न देश मानव अधिकारों की दिशा में अपनी यात्रा के क्रम में भिन्न–भिन्न पड़ावों पर विद्यमान हैं। ऐसा होने के पीछे राजनैतिक, ऐतिहासिक और आर्थिक स्थितियाँ मुख्य कारण हैं। इनके अतिरिक्त जानकारी का अभाव भी एक प्रमुख कारण है जिसके फलस्वरूप न केवल विभिन्न देशों के बीच भिन्नता मिलती है बल्कि एक ही देश में भी विभिन्न सामाजिक वर्गों और तबकों के बीच भी भिन्नता दिखायी पड़ती है। इस दृष्टि से मानव अधिकारों की शिक्षा का विशेष महत्व हो जाता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर इस आलेख में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत मानव अधिकार विषयक अन्य प्रमुख अभिसमयों का परिचय दिया जा रहा है।

स्मरणीय है कि परिभाषा के अनुसार मानव अधिकार सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से अलग हटकर मनुष्यता के धरातल पर सबको

* प्रोफेसर, मनोविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

उपलब्ध होते हैं। इन्हें विधि या कानून द्वारा समर्थन प्राप्त रहता है और इनके माध्यम से व्यक्ति को ऐसे कृत्यों के विरूद्ध संरक्षण प्राप्त रहा है जो उनके मौलिक अधिकारों पर आघात पहुंचाते हैं। दूसरी ओर ये अधिकार सरकारों को भी उनके आचरण के लिए दिशा–निर्देश देते हैं। इन अधिकारों की विशिष्टता यह है कि ये न केवल सबको बिना भेदभाव के उपलब्ध होते हैं बल्कि इन्हें किसी भी स्थिति में अतिक्रान्त नहीं किया जा सकता। संयुक्त राष्ट्र ने इन अधिकारों को व्यवस्थित करने, विभिन्न देशों को उपलब्ध कराने और विभिन्न देशों द्वारा स्वीकृत कराने की दिशा में विशेष पहल की है। इसके फलस्वरूप अनेक घोषणा–पत्र, संधियां और दिशानिर्देश अस्तित्व में आए हैं। अब तक ऐसे शताधिक प्रपत्र उपलब्ध हैं जो मानव अधिकारों के विस्तृत क्षेत्र को रेखांकित करते हैं। घातक है कि इन सभी प्रपत्रों का कार्यान्वयन सभी देशों द्वारा नहीं हुआ है। अतः विभिन्न देशों में मानव अधिकारों की वैधानिक स्थिति भिन्न–भिन्न है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध प्रपत्रों में मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस ऐतिहासिक प्रपत्र को आज से छह दशक पहले वर्ष 1948 में 10 दिसम्बर को स्वीकृति मिली थी। इस अत्यन्त व्यापक प्रपत्र ने प्रेरक की भूमिका निभाई है और इस प्रकार से मानव –अधिकारों की परिधि को निर्धारित किया है। इसके मूल में समस्त मानव जाति के लिए स्वतंत्रता, न्याय और शांति उपलब्ध कराने का संकल्प है। इसके अंतर्गत आने वाले अधिकारों में प्रमुख हैं: जीवन, स्वतंत्रता और सुरक्षा, उचित रहन–सहन का दर्जा, अत्याचार से बचने हेतु शरण लेना, विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शिक्षा तथा धर्म यातना तथा अपमान से मुक्ति। ये सभी मौलिक अधिकार हैं जो सबको प्राप्त हैं।

नागरिक तथा राजनैतिक अधिकारों से जुड़ा अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा एक दूसरा महत्वपूर्ण दस्तावेज है जो राज्य/सरकार के दायित्व को रेखांकित करता है। इसके अनुसार राज्य का यह दायित्व बनता है कि वह अपने नागरिकों को आत्मनिर्णय का अवसर दे, संचलन की छूट दे, विचार तथा संघ बनाने की स्वतंत्रता दे, अमानवीय व्यवहार से स्वतंत्रता दे, दासता या मनमाने निरोध से स्वतंत्रता दे, निष्पक्ष जांच और एकांत प्रदान करे। इसी प्रकार आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों से जुड़ा अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा

इन क्षेत्रों से जुड़े अधिकारों का प्रवर्तन करता है। इसके अंतर्गत न्याय सम्मत और अनुकूल परिस्थितियों में कार्य, सामाजिक संरक्षण, जीवन–निर्वहन का उचित स्तर, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य, शिक्षा का उच्च स्तर, सांस्कृतिक स्वतंत्रता तथा वैज्ञानिक प्रगति के प्राप्त लाभ शामिल हैं। भारत इस प्रसंविदा का पक्षकार है।

अंताराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृति पाने वाले अभिसमयों में प्रमुख हैं,: नस्ली भेदभाव के उन्मूलन तथा महिलाओं के साथ भेदभाव के उन्मूलन से जुड़े अभिसमय/यातना तथा अमानवीय व्यवहार तथा प्रवासी श्रमिकों और उनके परिवारों के अधिकारों की रक्षा से जुड़े अभिसमय।

बाल–अधिकार पर केन्द्रित अभिसमय को विभिन्न देशों से अभूतपूर्व समर्थन प्राप्त हुआ है। इस अभिसमय में बच्चों के अधिकारों को स्वीकार करने के साथ–साथ उन्हें विभिन्न प्रकार के दुर्व्यवहार से बचने और संरक्षण पाने की भी व्यवस्था की गई है। इस अभिसमय के अंतर्गत बाल–अधिकारों के कार्यान्वयन को व्यवस्थित करने के लिए सामान्य दिशा–निर्देश भी निर्धारित किए गए हैं। बाल अधिकारों के महत्व को देखते हुए लगभग दो सौ देशों ने अपनी सहमति और समर्थन प्रदान किया है। बाल–अधिकारों के अंर्तगत निम्नांकित प्रावधानों का समावेश किया गया है :–

- मुफ्त तथा अनिवार्य प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्रदान करना।
- आर्थिक शोषण, यौन–दुर्व्यवहार से संरक्षण तथा शारीरिक और मानसिक क्षति और उपेक्षा से संरक्षण देना।
- अशक्त बच्चों हेतु आवश्यक उपचार और शिक्षा पाने का अधिकार।
- सैन्य संघर्ष, बाल वेश्यावृत्ति और बाल अश्लील साहित्य (पोर्नोग्राफी) द्वारा प्रभावित बच्चों को संरक्षण प्रदान करना।

उपर्युक्त बाल–अधिकारों को लागू करने के लिए राज्यों हेतु कुछ निर्देश निश्चित किये गये हैं। ये निर्देश आवश्यक कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए पथ प्रदर्शक सरीखे हैं। इनके अनुसार सभी बच्चों के लिए अवसर की समानता सुनिश्चित करने के लिए किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करना चाहिए। राज्य या सरकार द्वारा जब कोई ऐसा निर्णय लिया जाता है जो

बच्चों को प्रभावित करता है तो यह निश्चित करना आवश्यक है कि बच्चों के हितों पर किसी तरह की आंच न आए। बच्चों के जीवन और विकास के अधिकार की अनदेखी नहीं होनी चाहिए। इसके अंतर्गत बच्चों का हर प्रकार का विकास यथा मानसिक,शारीरिक, भावात्मक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त बच्चों को अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए और उनके द्वारा अभिव्यक्त विचारों को शासन या सरकार द्वारा यथोचित महत्व भी दिया जाना चाहिए।

समस्त मानव जाति के हित को ध्यान में रख कर संयुक्त राष्ट्र महासभा ने विकास के अधिकार का एक घोषणा पत्र स्वीकार किया है। इसके अंतर्गत यह प्रावधान किया गया है कि विकास और समाज के कल्याण साधने की एक सतत् प्रक्रिया है। विकास के अधिकार को अनतिक्रमणीय करार दिया गया है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति को विकास में सहयोग एवं उसके उपभोग में भाग लेने का अवसर प्राप्त है। इस अधिकार के अंतर्गत विकास की एक समग्र अवधारणा ग्रहण की गई है। इस अवधारणा में सार्वजनिक भागीदारी अवसरों की समानता तथा प्राकृतिक संसाधनों के प्रति स्थायी प्रभुत्व सम्मिलित हैं। इस प्रकार यह घोषणा पत्र सामाजिक जीवन की प्रभावी रूपरेखा को प्रस्तुत करता है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर स्वीकृत किए गये उपर्युक्त दस्तावेजों के अंतर्गत किये गये प्रावधान मानव अधिकारों की दिशा में अनके संभावनाओं के द्वार खोलते हैं। आवश्यकता है कि विश्व के सभी देश आगे बढ़ कर इनको स्वीकार और अंगीकार करें तथा इनके प्रभावी क्रियान्वयन हेतु आवश्यक संसाधनों की व्यवस्था करें। ऐसा करना एक कठिन चुनौती है। स्मरणीय है कि बीसवीं सदी में मानव–अधिकारों की स्थिति बहुत अच्छी नहीं रही। हिंसा अनेक देशों में हावी रही और सशस्त्र–संघर्ष और राजनैतिक हिंसा के फलस्वरूप बहुत बड़ा नर–संहार हुआ। चिन्ता की बात यह है कि यह प्रवृत्ति अभी भी थमी प्रतीत नहीं होती। इक्कीसवीं सदी की स्थिति शोचनीय बनी हुई है। गरीबी, भुखमरी, रोग जैसी स्थितियाँ बहुत बड़े क्षेत्र में व्याप्त हैं। भारतीय समाज के परिदृश्य पर नजर डालें तो स्पष्ट होता है कि अवसरों की समानता, बाल अधिकार, आतंकवाद, महिलाओं और बच्चों का अवैध व्यापार जैसी समस्याएं गंभीर चुनौती के रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं। इन सबके साथ एक महत्वपूर्ण समस्या है न्याय

प्रक्रिया की जटिलता और अनुपलब्धता की। भारत की दांडिक न्याय प्रणाली जटिल, खर्चीली और समय साध्य है। स्वास्थ्य, शिक्षा और पर्यावरण के प्रश्न भी ज्वलंत रूप में हमारे सामने उपस्थित हैं। विकास के नाम पर चलने वाली तमाम परियोजनाओं से धन–जन की हानि के साथ पर्यावरण का संतुलन भी बिगड़ रहा है और जीवन जगत को भी खतरा पैदा हो रहा है। जब तक हम प्रश्नों को समग्रता में नही लेंगे तब तक ऐसी स्थितियां आती रहेंगी। प्रायः अल्पकालिक लाभ हेतु हम दीर्घकालिक हानि को गले लगा लेते हैं। ऐसा करना मानवता के हित में नहीं है।

एक राष्ट्र के रूप में भारतीय जनतंत्र कल्याणकारी राज्य की स्थापना के लक्ष्य के साथ प्रतिश्रुत है। स्वतंत्रता, बंधुत्व–न्याय और समानता की अवधारणाएं भारतीय संविधान के प्राण जैसी हैं। मूल अधिकार और नीति निर्देशक सिद्वान्तों को सम्मिलित कर भारतीय संविधान प्रारंभ से ही मानव–अधिकारों के प्रति सतर्क और संवेदनशील रहा हैं। यह आवश्यक है कि इनके अनुपालन में कमियां रही है और भ्रष्टाचार के बढ़ने के साथ इनका पर्याप्त लाभ हमें प्राप्त नहीं हो सका है। अतः आवश्यक है कि दृढ़ निश्चय के साथ, जो राजनैतिक इच्छाशक्ति के अभाव में संभव नहीं है, एक ऐसा सामाजिक वातावरण बनाया जाए जिसमें मानव अधिकारों की स्थापना, उसके पर्यवेक्षण और प्रसार की सशक्त व्यवस्था हो। इसके लिए मानव अधिकारों के बारे में चेतना विकसित करनी होगी। इस दिशा में मानव–अधिकार को सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना आवश्यक होगा।

***

बंधुआ मजदूरी प्रथा : समस्या एवं समाधान

डा. सुभाष शर्मा*

बंधुआ मजदूरी प्रथा सामन्ती उत्पादन–प्रणाली से जुड़ी प्रथा है। भारत में अंग्रेजी शासन के दौरान जमींदारी प्रथा, जागीरदारी प्रथा आदि विभिन्न इलाकों में शुरू की गई थी जिसका मुख्य उद्देश्य था कि ब्रिटिश शासन को जमींदारों/जागीरदारों के जरिये किसानों से एकमुश्त भूराजस्व प्राप्त होता रहे। अतः शासन ने सारे राजस्व गांवों की नीलामी कर दी और उच्च मत बोली लगाने वाले जमींदार को गांव वसूली हेतु सुपुर्द कर दिये गये। फिर जमींदारों/जागीरदारों ने जुल्म का अपना जलवा दिखाया। उन्होंने न केवल लगान/मालगुजारी की ऊंची दरें किसानों पर थोप दीं बल्कि किसानो से नाना प्रकार के गैरकानूनी कर भी वसूलने लगे। यदि किसी किसान के यहां पर शादी होती, बेटे का जन्म होता, वह हाथी–घोड़ा खरीदता, सिंचाई–व्यवस्था हेतु कुआँ–तालाब खुदवाता, कोई वाहन खरीदता आदि, तो उसे मुँहमांगा कर चुकाना पड़ता था। जो किसान सूखा–बाढ़ या अन्य कारणों से ऐसे राजस्व/अन्य कर नहीं चुका पाता, उसके खेत औने–पौने दाम पर अचानक डुगडुगी पिटवाकर नीलाम कर दिये जाते। ऐसी शोषणकारी व्यवस्था के कारण तमाम छोटे और सीमान्त किसान भूमिहीन मजदूर बन गये। अतः पेट की आग बुझाने और पारिवारिक–सामाजिक दायित्वों की पूर्ति हेतु (जैसे घर बनाना, शादी में खर्च, मृत्यु पर भोज में खर्च, दवा में खर्च आदि) कई भूमिहीन मजदूर बड़े जमींदार/जागीरदारों/साहूकारों से कर्ज लेने को मजबूर हो गये। कर्ज पर ब्याज की उँची दरें तो होती ही थीं, साथ में यह शर्त भी थोप दी जाती कि उसे या उसके लड़कों को या परिवार की महिलाओं को उसके पटने तक बिना मजदूरी या आंशिक मजदूरी पर काम करना पड़ेगा। दुर्भाग्यवश आजादी मिलने के बावजूद भारत के बिभिन्न अविकसित इलाकों में बंधुआ मजदूरी प्रथा कायम रही है जिसके लिए शासन–प्रशासन के साथ–साथ असंवेदनशील लोक समाज भी जिम्मेदार है।

---

* संयुक्त सचिव, रक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली

ज्ञातव्य है कि बंधुआ मजदूरी प्रथा विभिन्न सामाजिक–आर्थिक समस्याओं यथा अतिरेक मजदूर, बेरोजगारी/अल्प रोजगार भूमि का असमान वितरण, कम मजदूरी, मजबूरी में प्रवासन, सामाजिक रीति रिवाजों आदि से जटिल रूपों में जुड़ी है। प्रायः अनुसूचित जाति–जनजाति एवं अत्यंत पिछड़ी जातियों के लोग बंधुआ मजदूरी प्रथा के शिकार होते हैं।

यह जानना जरूरी है कि राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर बंधुआ मजदूरी प्रथा के बारे में क्या कानूनी/अर्द्ध कानूनी प्रावधान एवं प्रक्रियाएं हैं। बंधुआ मजदूरी खत्म करने के उद्देश्य से 1930 में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर एक बंधुआ मजदूरी सम्मेलन (फोर्स्ड लेबर कन्वेंशन नं. 29) संपन्न हुआ था जिसमें बंधुआ मजदूरी उसे माना गया जो काम या सेवा किसी व्यक्ति से जुर्माने की धमकी से कराया जाये जिसे वह स्वेच्छा से नहीं करना चाहता। उसके बाद 1948 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई 'मानवाधिकारों की सार्वजनिक घोषणा' में बंधुआ मजदूरी को खत्म करने की दृष्टि से तीन प्रावधान किये गये :

- सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र और समान गरिमा एवं अधिकारों से युक्त हैं अर्थात् न कोई छोटा है न बड़ा, न मालिक न गुलाम (अनुच्छेद 1)
- प्रत्येक व्यक्ति को जीवन, स्वतंत्रता और अपने शरीर की सुरक्षा का अधिकार है अर्थात् उसे कोई अपने अधीन नहीं रख सकता और न उसकी इच्छा के विरूद्ध उससे कोई कार्य करा सकता है (अनुच्छेद 3)।
- किसी को भी दास बनाकर या दासता की स्थिति में नहीं रखा जायेगा अर्थात् किसी प्रकार की दासता, अर्द्ध–गुलामी, दास–व्यापार आदि की कानूनी तौर पर मनाही है (अनुच्छेद 4)।

इस अन्तरराष्ट्रीय स्तर की घोषणा के आधार पर विभिन्न देशों ने अपने संविधानों में आवश्यक संशोधन किये अथवा नये संविधानों में बंधुआ मजदूरी प्रथा खत्म करने का प्रावधान किया। संयुक्त राष्ट्र ने फिर 1966 में नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार के प्रासंगिक प्रावधान किये।

- गुलामी और गुलाम–व्यापार को निषिद्ध कर दिया गया अनुच्छेद 8 (1)

- दूसरा, किसी भी व्यक्ति को गुलाम जैसी स्थिति में नहीं रखा जायेगा अनुच्छेद 8 (2)
- तीसरा, किसी भी व्यक्ति से बंधुआ मजदूरी नहीं करायी जायेगी अनुच्छेद 8 (3)

इसी प्रकार 1956 में संयुक्त राष्ट्र के बेगार श्रम के बाबत पूरक सम्मेलन में बंधुआपन को इस प्रकार परिभाषित किया गया : किसी कर्ज लेने वाले द्वारा कर्ज देने वाले के प्रति वादा कि वह कर्ज की जमानत (प्रतिभूति) के रूप में अपनी या अपने अधीनस्थ परिवार के सदस्यों की सेवा उसे मुहैया करायेगा। भारत सरकार ने इसका अनुमोदन किया है। जाहिर है, ऐसी सेवा या तो बिना भुगतान के होती है अथवा नाम मात्र का भुगतान किया जाता है। बाद में अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन की बंधुआ मजदूरी रोकने की रपट (2001) में बंधुआ मज़दूरी की संज्ञा उस स्थिति को दी गई जब किसी मज़दूर ने कर्ज़ के कारण अपनी सेवा कर्ज़ देने वाले को दी हो अर्थात कोई मज़दूर और उसके परिवार वाले ऋण के कारण ऋणदाता से एक खास समय के लिए या अनिर्दिष्ट समय के लिए बंध जाते हैं जब तक कि ऋण ब्याज सहित चुकता न हो जाये। बंधुआ मज़दूरी प्रथा के शोषण को देखते हुए तथा अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर संपन्न विश्व समुदाय के सम्मेलनों से प्रेरित होकर भारतीय संविधान के निर्माताओं ने तीसरे खंड में मूलाधिकारों में एक अधिकार (धारा 23) यह भी शामिल किया कि मानव व्यापार, बेगार तथा अन्य प्रकार के बंधुआ श्रम निषिद्ध होंगे तथा इनका उल्लंघन करने वाले को कानून द्वारा दंडित किया जायेगा। जाहिर है कि कोई भी पीड़ित व्यक्ति बंधुआ मजदूर बनाये जाने पर उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर करके इससे निजात पा सकता है क्योंकि शासन इस मूलाधिकार का कार्यान्वयन करने के लिए बाध्य है। अतः कई स्वयंसेवी संस्थाओं ने इस प्रावधान के तहत न्यायालयों से गुहार लगाई और उन्हें न्याय मिला। फिर राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में भी कई प्रासंगिक प्रावधान किये गये हैं : जैसे धारा 38 में जनता के कल्याण के लिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनानी है जो सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक न्याय पर टिकी हो। धारा 41 में काम का अधिकार, शिक्षा का अधिकार तथा बेरोजगारी, वृद्धावस्था, बीमारी, विकलांगता आदि की स्थिति में सरकारी

सहायता का प्रावधान है। धारा 42 के अनुसार राज्य का काम करने की न्यायपूर्ण एवं मानवीय दशाओं तथा मातृत्व सहायता प्रदान करना है। फिर धारा 43 में यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया गया है कि राज्य कानून या आर्थिक संगठन द्वारा सभी मजदूरों को जीने लायक मजदूरी, अच्छे जीवन स्तर हेतु काम की दशाएं, अवकाश का पूरा लाभ उठाने तथा सामाजिक –सांस्कृतिक अवसरों का लाभ उठाने के लिए प्रयास करेगा – विशेषकर राज्य कुटीर उद्योगों का समर्थन भी करेगा। इस प्रकार बंधुआ मजदूरी प्रथा को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से खत्म करने का प्रयास शासन–प्रशासन द्वारा करने हेतु संविधान कटिबद्ध है।

यह अकारण नहीं है कि भारतीय दंड विधान (इंडियन पेनल कोड) की धारा 374 में भी बंधुआ मजदूरी को अवैध घोषित करके दंडनीय बनाया गया है : यदि कोई व्यक्ति किसी को उसकी इच्छा के विरूद्ध कोई काम करने के लिए मजबूर करता है, तो उसे एक साल तक की कैद या जुर्माना या दोनों की सजा होगी। मगर 1976 के पहले बंधुआ मजदूरी प्रथा खत्म करने संबंधी कोई विशिष्ट कानून नहीं था। बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1976 के बनने से बंधुआ मजदूरी प्रथा की सामाप्ति की दिशा में कारगर पहल हुई। यह कानून काफी प्रगतिशील एवं व्यापक है क्योंकि यह शत–प्रतिशत बंधुआ मजदूरों के हितों की रक्षा के लिए कई प्रावधान करता है। सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें बंधुआ मजदूरी प्रथा की परिभाषा काफी व्यापक है जिससे कोई नियोजक बच नहीं सकें। इसके (धारा 2 जी) अनुसार यदि पूर्णतः या अंशतः जबर्दस्ती मजदूरी के लिए कोई मजदूर कोई इकरारनामा कर्ज देने वाले के साथ करता है या ऐसा किया हुआ माना जाता है (लिखित इकरारनामा होना जरूरी नहीं) जिसमें यह वादा होता है कि पूर्व में कर्जदार (या उसके परिवार) द्वारा लिया गया कोई अग्रिम (जिसके बारे में दस्तावेजी सबूत हो या न हो) वह काम करके चुकाएगा, अथवा किसी सामाजिक दायित्व या रीतिरिवाज के चलते वह ऐसा काम करता है, अथवा उत्तराधिकार के कारण किसी दायित्व का निर्वाह करने हेतु वह ऐसा काम करता है अथवा किसी आर्थिक मदद (जिसे उसने या उसके परिवार के किसी सदस्य ने ली हो) के लिए वह काम करता है अथवा सिकी जाति या समुदाय में महज जन्म लेने के कारण उसे वह कार्य खास समय या अनिश्चित

काल तक के लिए विवश होना पड़ता है। कहने का आशय यह है कि बंधुआ मजदूरी के सभी सामाजिक (रीति रिवाज, जाति, समुदाय, उत्तराधिकार) तथा आर्थिक (अग्रिम, आर्थिक मदद) पहलुओं को इस व्यापक परिभाषा में समेटा गया है। इसके साथ–साथ यह भी ध्यान रखा गया है कि काम करने का इकरारनामा लिखित या मौखिक हो सकता है, कि कर्ज का दस्तावेजी सबूत हो या नहीं हो सकता, कि जबरन कार्य कराना पूर्णतः या आंशिक हो सकता है (यानी या तो बिना किसी भुगतान के अथवा आंशिक भुगतान के), अग्रिम उस व्यक्ति ने स्वयं लिया हो अथवा उसके पूर्वजों ने लिया हो अथवा उसकी संतानों ने लिया हो, कि यह प्रथा जन्मना हो सकती है अथवा वस्तुनिष्ठ आधारों पर अर्जित हो सकती है, कि यह इकरारनामा किसी खास कालखंड के लिए हो सकता है अथवा अनिर्दिष्ट समय के लिए हो सकता है। जाहिर है कि इस प्रथा से उक्त मजदूर उस नियोजक के अथवा अन्य नियोजक (उसी स्थान या बाहर के) के अधीन काम नहीं कर सकता और न दूसरी आजीविका का साधन (जैसे स्वयं मछलीपालन, मुर्गीपालन, बकरीपालन,गायपालन आदि) स्वतंत्र रूप से शुरू कर सकता है। वह भारत के दूसरे भूभाग में जाकर रोजगार नहीं पा सकता। फिर कोढ़ में खाज यह भी है कि वह अपने या मूल्य पर नहीं बेच सकता। इस कानून के तहत यदि कोई नियोजक किसी मजदूर को वैसे काम के लिए राज्य सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी देता है, तो उसे 'नाम मात्र' की मजदूरी माना जायेगा। यदि किसी काम के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित नहीं हो, तो उस क्षेत्र में वैसे काम के लिए जो मजदूरी सामान्यतः दी जाती है, वही मापदंड माना जायेगा। बाद में किये गये संशोधन (1984) के अनुसार बंधुआ मजदूरी प्रथा की परिभाषा में ठेका मजदूर और अन्तरराज्यीय प्रवासी मजदूर को भी शामिल कर लिया गया है। इस कानून की एक विशेषता यह भी है कि यदि किसी दूसरे कानून से इस कानून के प्रावधानों में विरोधाभास होगा, तो इस कानून के प्रावधान ही मान्य होंगे। इतना ही नहीं, इस कानून (धारा 4) के अनुसार इसके शुरू होते ही बंधुआ मजदूरी प्रथा समाप्त मानी जायेगी और कोई भी बंधुआ मजदूरी मुक्त माना जायेगा और उसे भुगतान का कोई दायित्व नहीं निभाना पड़ेगा। इसके शुरू होते ही कोई व्यक्ति किसी को बंधुआ मजदूरी प्रथा के निमित्त कोई ऋण नहीं देगा और न कोई व्यक्ति किसी से बेगार कराने हेतु उसे विवश करेगा। इसके साथ ही यह

प्रावधान (धारा 5) भी महत्वपूर्ण है कि इस कानून के शुरू होते ही कोई भी रीति–रिवाज, परंपरा, संविदा, इकरारनामा या अन्य दस्तावेज (चाहे वह इस कानून के पहले ही बनाया गया हो), जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को बंधुआ मजदूरी करनी पड़े, अवैध एवं अकरणीय माना जायेगा। इसी प्रकार (धारा 6) इस कानून के शुरू होते ही बंधुआ मजदूर का कोई भी भुगतान संबंधी दायित्व खत्म माना जायेगा अर्थात भले ही उसने लिखित रूप में कोई भुगतान संबंधी इकरारनामा किया हो, अब उसे भुगतान नहीं करना पड़ेगा। इसके अलावा इस कानून के शुरू होने के पहले यदि किसी न्यायालय ने बंधुआ मजदूर द्वारा ली गई अग्रिम राशि/ऋण की वसूली हेतु कोई जब्ती आदेश दिया हो, और बंधुआ मजदूर की कोई सम्पत्ति इस बाबत जब्त कर ली गई हो, तो वह सम्पत्ति उसे बहाल हो जायेगी तथा ऐसा कोई भी मुकदमा खारिज माना जायेगा। फिर किसी न्यायालय के आदेश से यदि किसी बंधुआ मजदूर को कारागार में बंद कर दिया गया हो, तो उसे तत्काल मुक्त कर दिया जायेगा। आगे यह भी सही प्रावधान (धारा 7) किया गया है कि यदि किसी बंधुआ मजदूर की कोई सम्पत्ति रेहन/बंधक रख ली गई हो, तो उसे वह बहाल कर दी जायेगी। इसके अलावा यह व्यवस्था (धारा 8) भी की गई है कि मुक्त बंधुआ मजदूर को उसकी बासगीत भूमि से बेदखल नहीं किया जायेगा, भले वह भूमि इस कानून के शुरू होने के पहले बंधुआ मजदूरी करने के एवज में उसे मिली हो।

अब सवाल उठता है कि बंधुआ मजदूरी प्रथा की समाप्ति के लिए क्या पद्धति अपनाई जायेगी और कौन इसका कार्यान्वयन करेगा। अतः प्रत्येक जिले के जिला मजिस्ट्रेट को (अथवा उसके अधीनस्थ अधिकारी) यह दायित्व दिया गया है यानी वह बंधुआ मजदूरों की पहचान करेगा, उन्हें मुक्त करेगा और उनके पुनर्वास तथा कल्याण की कार्रवाई भी करेगा। प्रत्येक जिले और अनुमंडल (सबडिवीजन) में एक सतर्कता समिति का गठन किया जाता है जिसके अध्यक्ष क्रमशः जिला दंडाधिकारी एवं अनुमंडल दंडाधिकारी होंगे जिनमें अनुसूचित जाति/जनजाति के तीन प्रतिनिधि, दो सामाजिक कार्यकर्त्ता, राज्य सरकार द्वारा मनोनीत तीन सरकारी/गैर सरकारी प्रतिनिधि, और एक बैंक (वित्तीय संस्थान) का प्रतिनिधि होगा। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि धारा 13 (5) के अनुसार सतर्कता समिति की कोई

कार्यवाही उसके गठन या कार्यवाही में हुई किसी त्रुटि के आधार पर अवैध नहीं होगी। ज़ाहिर है, ऐसा प्रावधान करना जरूरी था क्योंकि बंधुआ मजदूर रखने वाले प्रायः अमीर वर्ग के ताकतवर सामंत लोग होते हैं जो सतर्कता समिति की कार्यवाही/गठन की छोटी–सी त्रुटि के लिए न्यायालय में चुनौती दे सकते हैं और प्रायः कुछ न्यायालय महज तकनीकी आधार पर उन्हें अवैध करार दे सकते हैं। इस प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि यदि कोई बंधुआ मजदूर या सतर्कता समिति किसी ऋण को बंधुआ ऋण मानती है, तो उसे बंधुआ ऋण नहीं होने की बात कर्ज देने वाले को सिद्ध करनी पड़ेगी। इस कानून के प्रावधानों का उल्लंघन करने के लिए पाँच प्रकार के दंड (धारा 16 से 20) हैं:

- इस कानून के लागू होने के बाद यदि कोई व्यक्ति किसी से बंधुआ मजदूरी कराने को विवश करता है, तो उसे तीन साल तक की कैद और दो हजार रूपए तक का जुर्माना होगा।
- यदि कोई व्यक्ति इस कानून के लागू होने के बाद कोई बंधुआ ऋण देता है, तो उसे तीन साल तक की कैद और दो हजार रूपए तक का जुर्माना होगा।
- यदि कोई व्यक्ति इस कानून के लागू होने के बाद कोई रीति–रिवाज, परंपरा, ठेका, इकरारनामा या अन्य दस्तावेज तैयार करता है जिसके अनुसार किसी से बंधुआ मजदूरी करायी जाती है, तो उसे तीन साल तक की कैद और दो हजार रूपए तक का जुर्माना होगा।
- यदि कोई नियोजक इस कानून के लागू होने के तीस दिनों के भीतर बंधुआ मजदूर को उसकी सम्पत्ति बहाल नहीं करता, तो उसे एक साल तक की सजा या एक हजार रूपए तक का जुर्माना होगा।
- यदि कोई व्यक्ति ऐसे अपराध के लिए किसी को उकसाता है, और इस कानून के तहत दंडनीय है, तो उस अपराध के लिए सजा मिलेगी जिसके लिए उसने किसी को उकसाया। यहां उल्लेखनीय है कि उकसाने पर भी यदि वह अपराध नहीं हुआ है, तो भी उकसाने वाला दंडनीय होगा।

इस कानून के तहत कार्यवाही का संचालन कार्यपालक दंडाधिकारी करेंगे जिन्हें सिविल न्यायालय के रूप में कार्य करने हेतु राज्य सरकार प्राधिकृत करती है। यह विचारण संक्षिप्त होगा जिससे त्वरित गति से पीड़ित को न्याय मिल सके। इस कानून के तहत कोई भी अपराध संज्ञेय बनाया गया है अर्थात् पुलिस अभियुक्त को बिना वारंट के गिरफ्तार कर सकती है परंतु इसे जमानतीय बनाया गया है। इस कानून की सबसे बड़ी विशेषता है कि किसी भी सिविल न्यायालय को इस कानून के किसी प्रावधान के बारे में कोई अधिकार नहीं दिया गया है। इसके अलावा इस कानून के तहत किये गये किसी कार्य या किये जाने वाले कार्य के बाबत कोई सिविल न्यायालय स्थगनादेश नहीं दे सकेगा।

भारत सरकार और राज्य सरकार द्वारा संयुक्त रूप से (50:50 आधार पर) मुक्त बंधुआ मजदूरों को 20000/– रू. प्रत्येक की दर से पुनर्वासित किया जाता है (उत्तर पूर्वी राज्यों में केन्द्र सरकार पूरी राशि देती है)। जिन जिलों में बंधुआ मजदूरों की संख्या ज्यादा होती है, उनमें सर्वेक्षण हेतु दो लाख रूपये प्रति जिला की दर से राज्य सरकार को केन्द्र सरकार राशि मुहैया कराती है। इसके अलावा प्रत्येक राज्य सरकार को दस लाख रूपये प्रति वर्ष की दर से जागरूकता अभियान चलाने हेतु केन्द्र सरकार आबंटित करती है। इसके अलावा केंद्र सरकार प्रत्येक राज्य सरकार को प्रति वर्ष पांच लाख रूपये देती है जिससे वह मौजूदा भूमि–ऋण संबंधी मुद्दों के प्रभाव तथा गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों, सरकारी स्रोतों से दी गई वित्तीय सहायता का प्रभाव आदि का अध्ययन करा सके। फिर राज्य सरकारों को केन्द्र सरकार ने यह सलाह भी दी है कि वे केन्द्र प्रायोजित योजना को अन्य कार्यक्रमों यथा स्वर्णजयंती ग्राम स्वरोजगार योजना, विशेष अंगीभूत योजना, जनजाति उप–योजना आदि के साथ मिला लें। पुनर्वास योजना में निम्नलिखित मुख्य तत्वों को शामिल किया गया है : गृहस्थल तथा कृषि भूमि का आबंटन, भूमि विकास, कम खर्च का आवास, पशुपालन–दुग्ध उद्योग, मुर्गीपालन, सुअरपालन, नये हुनर एवं मौजूदा हुनर का विकास, रोजगार सृजन एवं न्यूनतम मजदूरी लागू करना, लघु वनोपज का एकत्रण एवं प्रसंस्करण, लक्षित जनवितरण प्रणाली के तहत आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति, बच्चों की शिक्षा एवं नागरिक अधिकारों का संरक्षण। भारत के

विभिन्न राज्यों में 2,82,135 बंधुआ मजदूरों की पहचान हुई है और 2,60,714 बंधुआ मजदूरों का पुनर्वास हुआ है। इस प्रकार पुनर्वास की स्थिति संतोषजनक कही जा सकती है, मगर बेहतर नहीं। अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार भारत में 1.5 करोड़ बंधुआ मजदूर हैं जिनमें पचास लाख बच्चे हैं। बंधुआ मुक्ति मोर्चा के अध्यक्ष स्वामी अग्निवेश बंधुआ मजदूरों की संख्या दस करोड़ बताते हैं जिनमें 3.5 करोड़ बच्चे शामिल हैं। मगर यह महज अंदाजा है, वैज्ञानिक सर्वेक्षण पर आधारित नहीं है।

वास्तव में, बंधुआ मजदूरी प्रथा एक जटिल प्रक्रिया से गुजरती है। यदि पहचान किये गये और मुक्त किये गये बंधुआ मजदूरों का ससमय पुनर्वास नहीं किया जाता और प्रशासन उन्हें हर संभव संरक्षण नहीं देता, तो वे बदतर स्थिति में चले जाते हैं और कानूनी प्रावधानों का उपहास होता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि विगत कुछ वर्षों में कृषि क्षेत्र के अतिरिक्त ईंट भट्टों, पत्थर खदानों, पटाखा निर्माण, अगरबत्ती निर्माण, दरी–कालीन उद्योग, रेशम उद्योग, जरी उद्योग, काँच–पीतल–कुम्भकारी उद्योग, ताला–चूड़ी उद्योग में बंधुआ मजदूरों की तादाद काफी है जिनमें बच्चों की संख्या सर्वाधिक है। ऐसा देखा गया है कि दिल्ली, मुंबई, जयपुर, सूरत, अहमदाबाद, कलकत्ता, बनारस आदि में कभी–कभी अभियान चलाकर बालमजदूरों को शोषण वाले जोखिमपूर्ण कार्यों से मुक्त किया जाता है और प्रशासन द्वारा अपने कार्य की इतिश्री समझ ली जाती है। शासन–प्रशासन की इच्छाशक्ति में कमी के कारण उनका पुनर्वास बिल्कुल नहीं किया जाता जो केन्द्र सरकार की नीतियों और संविधान तथा बंधुआ मजदूरी प्रथा (उन्मूलन) अधिनियम 1976 की आत्मा के विरूद्ध है। बंधुआ मजदूरों को अविलंब नियमित आय सृजन करने वाले रोजगार उपलब्ध कराने होंगे, उन्हें गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम में सर्वोपरि प्राथमिकता देनी होगी, प्राकृतिक आपदाओं और सामाजिक संकटों (यथा दंगा–फसाद) से उत्पन्न बेरोजगारी की स्थिति का सामना पूरी निष्ठा से तत्काल करना होगा, ऐसे मामलों का विचारण द्रुत गति से करना होगा जिससे ऐसे शोषक तत्वों पर लगाम लग सके। समय का तकाजा है कि जिलों/अनुमंडलों की सतर्कता समितियों को पुनर्जीवित किया जाये तथा सरकारी–गैर सरकारी संस्थाओं की सक्रिय भागीदारी से बंधुआ मजदूरी प्रथा को निर्मूल किया जाये। आज भारतीय

समाज के समक्ष यह चुनौती है कि कैसे बंधुआ मजदूरी प्रथा को राजनैतिक एजेंडा बनाया जाये,कैसे शासन–प्रशासन को इसके प्रति ज्यादा संवेदनशील बनाया जाये, कैसे पुनर्वास को स्थायी बनाया जाये, कैसे बंधुआ महिला मजदूरों और देह–व्यापार की शिकार महिलाओं की पहचान, मुक्ति एवं पुनर्वास सुनिश्चित किया जाये, कैसे बंधुआ बाल मजदूरों का मुद्दा नीति और राजनीति के केन्द्र में लाया जाये ? चुनौतियां सामने आनी स्वाभाविक हैं मगर ऐसी कोई चुनौती नहीं है जिसे मानव समाज स्वीकार न कर पाये। मगर इच्छाशक्ति, सत्यनिष्ठा, प्रभावकारिता, परिणामोन्मुखी कार्य योजना तथा संवेदनशीलता का होना निहायत जरूरी है। क्या हम आशा करें कि सरकारी तंत्र, स्वयंसेवी संस्थाएं, मानवाधिकार आयोग एवं समाज के लोग इन मुद्दों को, बिना समय गँवाये, प्राथमिकता देगा जिससे हमारा समाज ज़्यादा जागरूक एवं मानवीय बन सके।

***

सामाजिक न्याय तथा केन्द्रीय अर्द्धसैनिक बल

राजेश प्रताप सिंह*

वर्तमान समय में समाज के हर क्षेत्र में भारी बदलाव होने के कारण यह आवश्यक हो गया है कि हम भारत के परिप्रेक्ष्य में मानव संबंधों को नए सिरे से परिभाषित करके इन अधिकारों को समाज के विभिन्न वर्गों के लिए लागू करने का प्रयास करें। हम प्रायः इन नये बदलावों और उनसे उत्पन्न होने वाले प्रभावों को समझने एवं व्याख्या करने में असमर्थ रहते हैं क्योंकि हमारे सभी संबंध पारंपरिक रूप से समाज में चलते हैं और ज्यादातर हम उसी परंपरा से बंधे रहते हैं।

हम सभी जानते हैं कि समाज में नई–नई समस्याओं के कारण पुलिस को नई–नई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जैसे कि दूसरे देशों से अनाधिक रूप से आने वाले लोगों की समस्या, आतंकवाद, कानून एवं व्यवस्था, साम्प्रदायिकता, नक्सलवादी आंदोलन आदि। इन समस्याओं का रूप इतना जटिल एवं विस्तृत है कि पुलिस इसे पूर्ण रूप से समाप्त नहीं कर पाती। यद्यपि पुलिस राज्य का विषय है, तथापि इसी समस्या को देखते हुए भारत सरकार ने केन्द्रीय अर्द्ध–सैनिक बलों का गठन किया जिनका कार्य प्रमुख रूप से राज्य पुलिस को उपरोक्त समस्याओं के संदर्भ में सहायता प्रदान करना है क्योंकि राष्ट्रीय सुरक्षा पर इनका व्यापक प्रभाव पड़ता है। वर्तमान में हमारे देश में 6 अर्द्ध सैनिक संगठन हैं जिनको विशेष कार्य दिये गये हैं। उदाहरण के तौर पर सीमा सुरक्षा बल को भारत–पाकिस्तान सीमा की रक्षा, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल को देश की आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था, केन्द्रीय औद्योगिक सुरक्षा बल को महत्वपूर्ण औद्योगिक/वाणिज्यिक प्रतिष्ठानों व हवाई अड्डों की सुरक्षा, भारत तिब्बत सीमा पुलिस को भारत तिब्बत सीमा की सुरक्षा का दायित्व सौंपा गया है। इन सभी जगहों पर अर्द्ध सैनिक बलों का सामना समाज के विभिन्न वर्गों से होता है। यहीं पर यह प्रश्न उठता है कि समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों के साथ इन बलों का व्यवहार कैसा हो?

*** महानिरीक्षक (पी.ए.सी) मुरादाबाद जोन (उ.प्र.)**

अर्द्ध–सैनिक बलों के जनता के प्रति व्यवहार के विषय में विचार–विमर्श करते समय हमें यह बात अपने ध्यान में रखनी होगी कि अर्द्ध–सैनिक बलों को पुलिस से अलग करके नहीं देखा जा सकता क्योंकि इनका कार्य, पुलिस के जो प्रमुख कार्य हैं उनको एक विशेषज्ञ की तरह करना और समय पड़ने पर स्थानीय पुलिस को मदद करना और समस्याओं से लड़ना है। ऐसे में यह जरूरी है कि हम पुलिस एवं समाज के अंतर्संबंधों का सही ढंग से विश्लेषण करें। पुलिस कभी भी शून्य में कार्य नहीं करती और न ही इनका सामना बेजान एवं असंवेदनशील वस्तुओं से होता है। पुलिस एक संवेदनशील सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत काम करती है अतः पुलिस के कर्तव्यों को व्याख्यायित करते समय इन सभी बिंदुओं को नजरंदाज करना हमारी एक बौद्धिक भूल होगी। दूसरा, चाहे हम किसी विशेष परिस्थिति में पुलिस से बहुत नाराज हों या खुश परंतु यह तय है कि कोई भी व्यक्ति इस बात से इंकार नहीं कर सकता कि समाज को सही ढंग से चलाना, बिना पुलिस के, संभव नहीं है। सन् 1964 में बेन व्हाइटकर ने इंगलैंड की पुलिस के बारे में अध्ययन करते हुए अपने कुछ विचार रखे थे जो आज भी भारत के परिप्रेक्ष्य में सत्य प्रतीत होते हैं। "हम पुलिस से अपेक्षा करते हैं कि वह मानवीय भी रहे और अमानवीय भी, हम उसे कानून की स्थापना करने के लिए लगाते हैं और फिर उससे अपेक्षा करते हैं कि वह कुछ लोगों को छूट भी दे, जब वह कानून हमारे संबंध में लागू करती है तो हम उसका विरोध करते हैं परंतु और कहीं कानून लागू नहीं करती है तो हम उसकी बर्खास्तगी की मांग करते हैं, हम उसे घूस देते हैं और उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार की कड़ी निन्दा भी करते हैं, हम पुलिस से यह अपेक्षा करते हैं कि वह समाज का एक अंग बनकर रहे परंतु पुलिस को समाज में प्रचलित सामाजिक मूल्यों से वंचित भी करते हैं, हम कभी–कभी समाज के प्रति हिंसा की प्रशंसा करते हैं परंतु यदि वही हिंसा पुलिस करती है तो उसका विरोध करते हैं, हम पुलिस को कहते हैं कि उसे जनता से सूचना पाने का अधिकार है परंतु हम उसे सूचना देने से कतराते हैं, हम अपेक्षा करते हैं कि वह अपराध का खात्मा करे परंतु उसे खत्म करने में किसी भी तरह की कानूनी कार्रवाई नहीं करे।" इस तरह से पुलिस के कार्य एवं जनता की अपेक्षाओं में विरोधाभास भी प्रतीत होता है और इस विरोधाभास को जितना ही हम कम करेंगे उतनी ही अच्छी पुलिस व्यवस्था एवं सामाजिक व्यवस्था चलेगी। वास्तव में पुलिस और समाज एक–दूसरे की

सहयोगी इकाइयां हैं। इनके आपसी सहयोग से बेहतर जिन्दगी जीने की स्थितियां बनती हैं। आपराधिक एवं सामान्य न्याय व्यवस्था की संरचना एवं संचालन में पुलिस एक महत्वपूर्ण अंग है तथा यही कारण है कि नागरिकों के अधिकार से जुड़े प्रकरण, चाहे वे संविधान से संबंधित हों या फिर दीवानी या आपराधिक कानून से संबंधित पुलिस का सहयोग एवं भूमिका सभी मामलों में महत्वपूर्ण होती है।

वर्तमान प्रजातांत्रिक व्यवस्था में केन्द्रीय अर्द्ध–सैनिक बलों की भूमिका विशिष्ट प्रकृति की है। उन्हें राष्ट्रीय ही नहीं वरन् अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर लोगों की नवीनतम अभिलाषाओं के अनुरूप समाज के वर्तमान विकास के साथ चलना है। हम सभी अन्तरराष्ट्रीय समझौतों को जानते हैं जिनका अनुसरण दैनंदिन आधार पर किया जाना है। निदेशात्मक सिद्धान्त संविधान के गैर – वादयोग्य तत्व नहीं हैं अर्थात नक्सल या दंगाइयों से निपटने में कोई भी पुलिस या अर्द्ध–सैनिक बल यह नहीं कह सकता कि वह यू.डी.एच.आर. या आइ.सी.सी.पी.आर. या शिशु संरक्षण तथा नारी जाति के घोषणा पत्र का पालन नहीं करेगा।

अब प्रश्न उठता है कि सामाजिक न्याय क्या है और क्यों वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यह जरूरी हो गया है कि अर्द्ध–सैनिक बल भी अपने कर्तव्यों के निर्वहन के समय सामाजिक न्याय के प्रति सतर्क रहें। सामाजिक एवं आर्थिक न्याय किसी भी सभ्य समाज की धुरी है और मानवाधिकार का प्रमुख स्तंभ है। यह सही है कि चंद शब्दों में सामाजिक न्याय को परिभाषित नहीं किया जा सकता परंतु इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि सामाजिक न्याय का कोई अर्थ ही नहीं है। यह उसी तरह से है जैसे कि नदियों को उनके किनारों से नहीं बांधा जा सकता परंतु इसका तात्पर्य यह भी नहीं है कि नदियों का कोई अस्तित्व ही नहीं है। सामाजिक एवं आर्थिक समानता ही विधि के नियम की भावना है। यह गतिशील व परिवर्तनीय आदर्श एवं बहुआयामी विचार का प्रतीक है। जस्टिस के.सुब्बाराव ने कहा है कि सामाजिक न्याय सभी के प्रति न्याय संगत व निष्पक्ष होता है न कि किसी व्यक्ति विशेष के प्रति। सामाजिक न्याय समाज के कमजोर वर्गों के प्रति बेहतर बरताव की मांग कर सकता है परंतु यह सिर्फ समाज में व्याप्त असंतुलन को दूर करने के लिए है न कि किसी को प्रताड़ित या किसी के प्रति अन्याय करने के लिए।

सामाजिक न्याय प्रमुख रूप से वह आचार संहिता है जिसे समाज बहुआयामी विकास के लिए लागू करता है और पालन करता है। क्रमिक विकास में मनुष्य अपनी बुद्धि से सर्वजेता होने का प्रयास करता है परंतु अन्तर्ज्ञान उसे समाज में अन्य लोगों के प्रति जिम्मेदारी के बारे में बताता है जिसे कि वह नैतिकता के नाम से जानता है। नैतिकता और मनुष्य की सर्वजेता की इच्छा का अंतर्द्वंद्व ही मनुष्य के सामाजिक व्यक्तित्व को प्रतिबिंबित करता है। न्याय इन दोनों अंतर्विरोधी बलों में सामंजस्य बिठाने का नाम है, यह मनुष्य की स्वार्थपरता एवं उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों का सामंजस्य है। सामाजिक न्याय मनुष्य के अधिकार एवं कर्तव्य, उसकी स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व का संतुलन है तथा इस संतुलन को लागू करने के लिए समाज ने राज्य की स्थापना की और राज्य को यह अधिकार दिए कि वह इनको लागू करे।

कल्याणकारी राज्य, जैसा कि हम लोग हैं, का यह उत्तरदायित्व होता है कि सामाजिक हितों की सभी तरह से रक्षा करें। इन राज्यों में कानून की योजना इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए की जाती है। कल्याणकारी राज्य समस्त सामाजिक समस्याओं को एक व्यावहारिक समाधान देने का प्रयास करता है। सामाजिक न्याय सभी समस्याओं को सामाजिक कल्याण के माध्यम से सुलझाने का एक प्रयास है। सामाजिक कल्याण एक प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य है सामाजिक न्याय की प्राप्ति। समाज कल्याण साधन है जबकि सामाजिक न्याय साध्य है।

भारत वर्ष के संदर्भ में सामाजिक न्याय हमारे संविधान की धुरी है। संवैधानिक रूप से राज्य समाज के सभी वर्गों का जीवन स्तर एक सामान्य स्तर तक लाने के लिए बाध्य है। सामाजिक न्याय की अवधारणा हमारे लिए इसलिए भी महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि हमारी एकता अनेकता के आधार पर टिकी है और यहां पर ज्यादातर लोग अशिक्षित हैं। समाज का एक बड़ा वर्ग आज भी रोटी, कपड़ा और मकान के लिए चिंतित है। तमाम लोग ऐसे हैं जो न्यूनतम मानवीय सुविधाओं के अभाव में जीवन यापन कर रहे हैं। जस्टिस कृष्णा अय्यर (सामाजिक न्याय:सूर्यास्त या भोर) मे सही कहा था कि भारत वर्ष में क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद आदि ऐसी मिसाइलें हैं जो हमारे सामाजिक न्याय रूपी जहाज को मार कर गिराती रहती हैं।

हमारे संविधान का आमुख, भाग–3 और भाग–4 भारत में सामाजिक न्याय की व्याख्या करता हैं। धर्म, जाति, रंग, लिंग और जन्म स्थान के आधार पर हमारे देश में भेदभाव नहीं किया जा सकता। सार्वजनिक स्थानों पर जाने का सभी को अधिकार है। कानून के अनुसार सभी को न्याय देना, इस कानून के पीछे राज्य का अधिकार होना और न्यायालयों का यह अधिकार होना कि वह इसे उद्घोषित कर सके तथा कार्यपालिका का यह कर्तव्य होना कि इन निर्णयों को सही ढंग से अनुपालन सुनिश्चित कर सके, यह किसी भी न्यायिक समाज के प्रमुख चिन्ह हैं। सामाजिक न्याय को सभी लोगों को, सभी वर्गो को प्रदान करने के लिए सामाजिक विधिकार की परिकल्पना की गई है। भारतवर्ष में सामाजिक विधिकार निम्नलिखित प्रकार के हैं:–

1. वे कानून जो सामाजिक बुराइयों के विरूद्ध हैं जैसे अस्पृश्यता अधिनियम आदि।
2. वे कानून जो आर्थिक बुराइयों के विरूद्ध हैं जैसे जमींदारी उन्मूलन अधिनियम।
3. वे कानून जो समाज की सेवा के लिए हैं जैसे जन स्वास्थ्य एवं शिक्षा, आवास व शहरों की योजना संबंधी नियम।
4. सामाजिक सुरक्षा संबंधी कानून जैसे कर्मचारी भविष्य निधि अधिनियम।
5. समाज कल्याण अधिनियम जैसे घरेलू हिंसा अधिनियम, मद्य निषेध अधिनियम इत्यादि।

यह सभी कानून संविधान द्वारा स्थापित उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए बनाए गए हैं। आमुख में जिन लक्ष्यों और उद्देश्यों की विस्तार से विवेचना की गई है वे पूर्ण रूप से संविधान के भाग–3 जो कि मूल अधिकार और भाग–4 जो कि नीति निर्देशक सिद्धांत (डारेक्टिव प्रिंसिपलस ऑफ स्टेट पॉलिसी) में हैं, पूरी तरह से व्याख्यायित की गई है। आमुख, मूल अधिकार एवं निर्देशक तत्व, ये तीनों मिला कर समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए न्याय सुनिश्चित करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक न्याय के जिस आदर्श रूप की अवधारणा संविधान में की गई थी उसको तमाम कानूनों के बावजूद, यहां तक कि न्यायालयों के निर्णयों में बार–बार दोहराये जाने के बावजूद, अपेक्षित परिणाम नहीं मिल रहे हैं। समाज के सामान्य आदमी की भलाई के लिए जो नियम बनाए गए हैं वे ज्यादातर किताबों की शोभा बढ़ा रहे हैं ऐसा इसलिए हो रहा है क्योंकि सामान्य आदमी में सामाजिक जागृति का अभाव है और दूसरा, समाज के उन लोगों में जिनका स्तर बहुत ऊपर है और जिन्हें समाज के अन्य वर्गों को आगे बढ़ाने में मदद करनी चाहिए, उनमें नैतिक शिक्षा का अभाव है।

सामान्य रूप से समस्त कार्यपालिका और विशेष रूप से पुलिस जिसमें अर्द्ध–सैनिक बल भी सम्मिलित हैं। उनकी समाज के सामान्य लोगों को न्याय दिलाने में बहुत ही प्रमुख भूमिका एवं उत्तरदायित्व है एवं वे तभी सफल हो सकते हैं जबः–

- उनका सामाजिक न्याय की अवधारणा में विश्वास हो जो संविधान का प्राण है।
- इन सिद्धांतों को लागू करने में उनके अंदर धर्म प्रचारक भाव हो, जो लोगों में विश्वास पैदा कर सके।
- जो लोग इन सामाजिक मूल्यों को लागू कर रहे हैं उनका अपना चरित्र हो क्योंकि भले ही वे संविधान के प्रति बहुत निष्ठावान हों और उच्च शिक्षित हों परंतु यदि वे भ्रष्ट हैं तो वे अन्य लोगों से ज्यादा खतरनाक साबित हो सकते हैं।
- उनमें एक स्तर की योग्यता एवं उत्तरदायित्व की भावना हो।
- समाज के पिछड़े वर्गों के प्रति सहानुभूति और संवेदना हो तथा साथ ही साथ ऐसे लोग जो भ्रष्ट हैं उनके प्रति उनको कठोर होना आवश्यक है।

हम सभी जानते हैं कि संवेदना के बिना ज्ञान उसी तरह है जैसे कि मार्गदर्शित मिसाईल एवं कुपथगामी मन। जब तक यह पंचशील समाज के जिम्मेदार लोगों में नहीं आयेगा तब तक समस्त कानून कागजी शेर रहेंगे।

अब प्रश्न उठता है कि इन परिस्थितियों में अर्द्ध सैनिक बलों का क्या उत्तरदायित्व है, उनकी क्या आचार संहिता है ? चाहे वह आतंकवाद के खिलाफ लड़ रहे हों या स्थानीय पुलिस को सांप्रदायिक तनाव की स्थिति में सहायता कर रहे हों या सीमा पर सुरक्षा कर रहे हों, इन सभी परिस्थितियों में अर्द्ध–सैनिक बल समाज के विभिन्न वर्गों के साथ संपर्क में आते हैं, जिनमें से निम्नलिखित के प्रति उनका विशेष उत्तरदायित्व बनता है क्योंकि ये सामान्य नागरिकों की तुलना में कमजोर, अशक्त, बेबस, लाचार एवं पिछड़े हुए होते हैं। ये समाज के वे हिस्से हैं जो किसी न किसी कारण से समाज के सामान्य वर्गों के मुकाबले विशेष ध्यान प्राप्त करने के हकदार हैं।

- महिलाएं
- बच्चे
- वृद्ध
- अल्प–संख्यक
- पिछड़े वर्ग
- निःशक्तजन

इन सभी की सुरक्षा के लिए तमाम कानून बनाये गए हैं। इन वर्गों के साथ आचरण करते समय हमें सिर्फ इन कानूनों और संविधान को अपने दिमाग में नहीं रखना है वरन उन्हें प्राप्त मानव अधिकारों को भी अच्छी तरह से संरक्षित करना होगा क्योंकि ये सभी अधिकार एक सामान्य जीवन बिताने के लिए मूलभूत तत्व हैं। यह कार्य इतना आसान नहीं है, अत्यंत दुष्कर है। इसके लिए अत्यंत उच्चस्तरीय अनुशासन, धैर्य, राष्ट्रीयता की भावना एवं जनसेवा की भावना आवश्यक है। सार्वजनिक सेवाओं को गरीब के दृष्टिकोण से परिभाषित करना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि वस्तुतः गरीब एवं कमजोर लोगों की सत्ता में कोई भागीदारी नहीं होती। प्रशासनिक न्याय यदि देर से दिया गया तो यह सामाजिक न्याय की समस्त अवधारणा को ही खत्म कर देता है। सामाजिक न्याय, प्रशासनिक प्रक्रिया तभी संभव है जब इसे लागू करने वाले सभी लोग अंत्योदय की भावना से अपने कार्य को पूरा करें। इस समाज के विभिन्न वर्गों से आचरण करते समय सिर्फ हम विधिक एवं नैतिक अधिकारों

के बारे में ही नहीं सोचें परंतु उनकी जो सामाजिक गरिमा है उसका भी ध्यान रखें। उदाहरण के तौर पर चैकिंग, कॉम्बिंग के दौरान लोगों के प्रति अपने व्यवहार को मर्यादित रखें। प्रायः ऐसे समय पुलिस/सुरक्षा बलों द्वारा अभद्रता किए जाने की शिकायत आती रही है। यह सही है कि सुरक्षा की दृष्टि से हम लोगों को चैक कर सकते हैं परंतु उनको इस तरह से चैक नहीं करें कि उनका अनादर हो। न्याय सिर्फ होना ही नहीं चाहिए बल्कि यह होते हुए दिखना भी चाहिए।

यह यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अर्द्ध सैनिक बल भी इसी समाज की उत्पत्ति हैं और वे समाज के सभी गुणों और दुर्गुणों को समान रूप से अपने में समाहित करते हैं। कई बार प्रशासनिक रूप से, मीडिया के द्वारा, सामने आयी समस्या के कारण ये लोग अत्यंत दबाव में कार्य करते हैं एंव लोकप्रिय नैतिकता जिसे कि हम सामान्य बुद्धि भी कहते हैं, कभी कभी इनके कार्य और आचरण को गलत तरीके से भी प्रभावित करती है। इसलिए यह सही है कि अर्द्ध सैनिक बल तभी सफल हो सकते हैं जब वे नैतिक एवं विधिक दोनों अधिकारों से कार्य करें। सही कार्य सिर्फ कानून के मापदण्ड पर ही खरा नहीं होना चाहिए वरन् इन्हें जनता के न्यायोचित निर्णय की अपेक्षा पर भी खरा उतरना चाहिए।

अर्द्ध सैनिक बल विशेष रूप से जब जनता के सामने आते हैं उस समय ज्यादातर सिविल एवं राजनैतिक अधिकारों के प्रति जवाबदेह होते हैं परन्तु संस्कृति एवं आर्थिक अधिकारों के बारे में अर्द्ध–सैनिक बल सीधे रूप से जिम्मेदार नहीं होते। विएना घोषणा 1993 में विकास, प्रजातंत्र एवं मानवाधिकारों को प्रमुख आधार स्तंभ माना गया है। प्रजातंत्र, विकास एवं मानवाधिकार को हम एक दूसरे से अलग नहीं कर सकते। गरीबी कहीं भी हो मानवता के लिए हर जगह वह एक खतरे के रूप में है। इन सभी अधिकारों में अर्द्ध सैनिक बल के सदस्य के रूप में तो नहीं परंतु एक समाज के सदस्य के रूप में हम अपना योगदान करे सकते हैं। उदाहरण के लिए वर्तमान समय में ग्लोबल वार्मिग समस्या से निपटने में हम अपने कार्यों में पेट्रोल, डीजल के उपयोग की कमी कर इस समस्या से निपटने में समाज की मदद कर सकते हैं। अपने लोगों में शिक्षा, स्त्रियों, बच्चों के प्रति समानता की भावना रखते हुए उन्हें आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित कर सकते हैं। चुनाव के समय समाज

के कमजोर वर्गों के लोगों को निष्पक्ष मतदान करने में मदद कर सकते हैं, प्राकृतिक आपदाओं के मामलों में पीड़ितों की मदद एवं उनका संरक्षण सुनिश्चित कर सकते हैं।

अतं में हम यह कह सकते हैं कि यदि अर्द्ध–सैनिक बल संविधान के उद्देश्यों को अपने दिमाग में रखते हुए अपने कर्तव्यों को पूरा करें तभी हम अपने पूर्वजों की इस अवधारणा को पूरा करने में समर्थ होंगे जिसमें उन्होंने कहा है कि

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद दुःख भाग भवेत।

***

तमिल साहित्य की लोक परम्परा और मानव अधिकार

डॉ. एन. सुंदरम्*

स्वतंत्र भारत के साहित्यिक विकास में भारत की भाषाओं तथा उपभाषाओं का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। तमिल़ द्रविड़ भाषा–समूह की सर्वाधिक समृद्ध तथा संसार की प्राचीनतम मौलिक भाषाओं में से है। ईसा से पाँचवीं शताब्दी पूर्व ही तमिल भाषा सुव्यवस्थित और सुसंस्कृत हो चुकी थी और उसमें सुनिश्चित साहित्यिक परम्पराएँ स्थापित हो चुकी थीं। संघ काल साहित्य में **पुरनानूरु** का उल्लेखनीय स्थान है। इसमें आज से दो हजार वर्ष पहले के तमिल देश की राजनीतिक स्थिति एवं शासन प्रणाली पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इस **पुरनानूरु** में संकलित निम्नलिखित कविता विश्व साहित्य का एक अमर सुवासयुक्त सुमन है–

सभी गाँव हमारे हैं सभी हमारे बांधव
बुराई और भलाई दूसरों की दी हुई नहीं होती।
पीड़ा और उसकी शांति भी उसी प्रकार की है।

उपर्युक्त पंक्तियों में विश्व मानव अधिकार की बात निहित है।

तमिल में तिरुकुरल संघ काल की सर्व–श्रेष्ठ रचना मानी जाती है। विद्वानों का मत है कि विश्व साहित्य में कोई भी एक ऐसा ग्रंथ नहीं जो तिरुक्कुरल की समता कर सकता हो। इस छोटे से आकार के ग्रंथ में धर्म– शास्त्र, अर्थ–शास्त्र का सम्पूर्ण सार भरा हुआ है। इसकी सर्वकालीन एवं सार्वजनीन उपयोगिता और प्रभाव का प्रमाण यह है कि जैन, बौद्ध, वैष्णव, शैव एवं ईसाई विद्वान यह प्रमाणित करने में सदियों से लगे हुए हैं कि तिरूवल्लुवर उन्हीं के धर्मावलंबी थे। वे मानव अधिकार पर विचार करते हुए कहते हैं :–

"हवि की वर्षा करके हजार यज्ञ रचने से एक जीव का प्राण न हरना कहीं अच्छा है।"

* पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, प्रेसीडेंसी कालेज, चैन्नई (तमिलनाडु)

वल्लुवर मानवतावादी हैं। उनके बारे में जी.यू.पोप ने ठीक ही कहा था–

विश्व–मानवता का चारण

शिलप्पदिकारम (नूपुर–गाथा) नाटकीय शैली में रचित श्रेष्ठ सुन्दर काव्य है। इस कथा में मानव अधिकार की बात निहित है इस कथा की नायिका कण्णकी है। नायक कोवलन व्यापार निमित पांड्य राजधानी मदुरा पहुँचता है। वहाँ चोरी के आरोप में तत्कालीन कानून के अनुसार कोवलन मृत्यु दंड पाता है। उसी क्षण कोवलन मारा जाता है। कण्णकी ने भरे राज–दरबार में यह सिद्ध किया कि कोवलन निरपराध है। जब न्याय प्रिय राजा को यह मालूम हुआ कि मेरी असावधानी के कारण एक निर्दोष व्यक्ति मारा गया तो वह मारे पश्चाताप् के उसी क्षण सिंहासन से धड़ाम गिरकर मर जाता है। कण्णकी अपने पति की मृत्यु का बदला लेती है। मानव–अधिकार से संबंधित यह काव्य लोक–गीतों की तर्ज पर अतीव सुन्दर मधुर गीतों का समावेश करके कवि ने अपनी रचना का सौंदर्य सौगुना बढ़ा दिया है। यह दो हजार वर्ष पहले के तमिल़ समाज का दर्पण है।

भक्ति काल की सभी रचनाएँ शैव एवं वैष्णव कवियों द्वारा रचित हैं। छुआ–छूत की भावना इस काल में मिट सी गई। सभी वर्णवालों को समान अधिकार मिला। शैव एवं वैष्णव कवियों के उपदेश का सार यही था–

"जड–चेतन गुण–दोशमय विश्व ईश्वरीय प्रकृति की ही छाया है। यह सत्य न सही, परन्तु सत्य–प्रकाश की छाया तो है। इस छाया में निहित सत्य का अन्वेषण करना ही मानव जीवन का ध्येय है। ऐसे महान ध्येय को पूर्ति का साधन होने के कारण जीवन पवित्र है, उत्कृष्ट है, वांछनीय है –हेय अथवा निन्द्य नहीं है।"

आधुनिक काल में महा कवि सुब्रह्मण्य भारती के रूप में एक महाशक्ति का उदय हुआ। अपने 39 वर्ष के जीवन काल में भारतीय ने तमिल–साहित्य एवं समाज में एक ऐसी क्रान्ति मचा दी जिससे तमिल़ समाज में जागृति पैदा हुई। भारतीय हर प्रकार के बन्धन के विरोधी थे। इन्होंने अपनी कविताओं द्वारा राष्ट्रीयता की भावना जगाई।

भारती जिस समय हुए तब अंग्रेजी राज के दुष्प्रभाव के कारण साधारण जनता में एक ऐसी हताशा, छाई हुई थी जिसे दूर करना दुःसाध्य सा प्रतीत हो रहा था।

"सहा नहीं जाता मुझसे, जब इन गिरे हुए मानवों के बारे में सोचता हूँ। भय, भय भय सब किसी से। एक ओर भय, दूसरी ओर झूठे दम्भ का ढकोसला। ऊँच –नीच, जाति पांति के हजारों विभेद। भारती ने मानव–अधिकार की बातें करते हुए कविता के खड्ग चलाए। अपने अधिकारों से अनभिज्ञ लोगों में भारती ने जागरूकता फैलाई।"

"पांचाली शपथम्" का खण्ड काव्य भारती की अमर रचना है। महाभारत के एक अंश के आधार पर रचित इस काव्य में मानवाधिकार पर कुठाराधात होते देख भारती तिलमिला उठे। द्रौपदी के रूप में भारती ने देश की स्थिति का प्रतीक–चित्र सा खींचा है। स्त्री अन्याय के प्रति कवि की चीत्कार देखिए–

"पुरवासियों की क्षुद्रता की क्या कहूँ? वीरताहीन श्वानगण हिंस्र पशु–जैसे राजकुमार को पाँव–तले कुचलकर, स्वर्ण–लता–सी द्रौपती को अंन्तःपुर में पहुँचाने के बजाय खड़े रहे लंबे पेड़ों की तरह और विलाप करने लगे। पुन्सत्वहीन रूदन भी किसी का सहायक बन सकता है कहीं?"

भारतीदासन युद्ध–विरोधी हैं। विश्व–शांति के गायक हैं। स्त्री अत्याचार का खंडन किया है। इस विषय में जो गीत रचे हैं, उनमे अंगारे बरसते हैं।

तमिलनाडु में मानव अधिकार के प्रश्नों में प्रमुख बालक व बालिकाओं पर अत्याचार है। शिवकाशी दक्षिणांचल में स्थित नगर है। यहाँ पटाखे, आतिशबाजी, दियासलाई आदि बड़ी मात्रा में तैयार करते हैं। इन चीजों की बिक्री से विदेशी मुद्रा मिलती है। लेकिन दुख की बात यह है कि इन कामों के लिए छोटे–छोटे बालक और कमसिन लड़कियों को नियुक्त करके धन कमाते हैं। तमिलनाडु के बड़े–बड़े शहरों में होटल, कारखाने, आटे, अद्योग आदि में बालक–बालिकाओं से कम वेतन देकर काम लेते हैं। इस अत्याचार का चित्रण कु.प. राजगोपालन की मनोविश्लेषणात्मक कहानियों में देखते हैं। इन बालकों के मानसिक उद्गारों तथा उमंगों का यथा–तथ्य वर्णन बड़े पैमाने

पर हुआ है। इस अत्याचार को रोकने के लिए कई कानून पारित हुए हैं मानव अधिकार के अल्लंघन पर पुलिस कुछ नहीं कर रही है।

मानव अधिकार का उल्लघंन पुलिस विभाग में अधिक हो रहा है। तमिलनाडु में तीन या चार टी.वी. चैनल में इस अराजकता का वर्णन सीरियल के रूप में देख रहे हैं। संदेहास्पद कारण दिखाकर बिना वारंट के कैद करना, उन्हें पुलिस स्टेशन में सताना, उनके साथ अमानुषिक व्यवहार करना, निर्दयता के साथ पेश आना, कैदियों की भोजन–व्यवस्था में धाँधली ये सब देखकर टी.वी दर्शक का खून खौलता है। थर्ड डिगरी तरीका सचमुच वर्णनातीत है। 'सेल्वी', 'अरसी', 'आनन्दम', 'मलर्कल', 'कोलंगल' आदि धारावाहिकों में पुलिस अत्याचार वर्णित है। पुलिस समाज का रक्षक है, उसको भक्षक के रूप में देखकर पुलिस के प्रति मन में घिनौना भाव ही जागृत होता है। रिश्वत का खुला खेल पुलिस विभाग में देखकर दर्शक रो पड़ते है। स्त्री– पुलिस भी पुरुषों के देखा–देखी अन्याय कर रही हैं। मुठभेड़ के नाम पर निरपराधियों को मारना जग हंसी की बात हो गई है।

हड़ताल, बन्द आदि आजकल शासन करने वाले ही कर रहे हैं। एक दर्दभरी घटना इस प्रकार है। कॉलेज छात्राएँ धर्मपुरी में पिकनिक जाने के लिए बस में आईं थीं। उस दिन प्रातः काल तत्कालीन मुख्यमंत्री कैद की गईं। खबर सुनते ही राज्य भर सरकारी वाहन जलाए जाने लगे। पिकनिक पार्टी के वाहन भी जलाने लगे। इसमें अन्याय की बात यह है कि वाहन के अन्दर छात्राएँ थी, उनको उतरने नहीं देते थे। कई लड़कियाँ जिन्दा जलाई गई। 'चक्का जाम', 'रेल रोको', आदि के द्वारा मानव अधिकार का उल्लंघन हुआ है।

शिवशंकरी तमिल की प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका है। कॉलेज की छात्र–छात्राएँ ब्राउन शुगर तथा मादक द्रव्यों के शिकार हो जाते हैं इसका रोचक चित्रण अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। मानव अधिकार के कई प्रश्नों पर उन्होंने लेखनी चलाई है। स्त्रियों के अधिकार पर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। संपत्ति पर हक, यौन संबंधी उनके विचार, महिलाओं से छेड़ छाड़, दफ्तर एवं कार्यालय में स्त्रियों पर यौन उत्पीड़न आदि स्त्री समस्याओं पर शिव शंकरी ने गंभीर से विचार किया है।

जयकांतन ख्याति प्राप्त तमिल उपन्यासकार हैं। स्त्री के हक पर आपने विचारोतेजक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। स्त्री–शिशु हत्या पर आपके विचार

दृष्टव्य हैं, वे पारखी मनोवैज्ञानिक लेखक हैं। वास्तव में वे प्रतिभा सम्पन्न कलाकार हैं। उनकी शैली बहुत की रोचक और हृदयस्पर्शी हैं। मछुआरों के जीवन पर आपकी उद्‌गारें उल्लेखनीय हैं। रामेश्वरम में श्रीलंका की पुलिस के अत्याचार पर उन्होंने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। इसमें मानव अधिकार का जो प्रश्न है।

तकल की लेखिकाओं ने मानव अधिकार के प्रश्न पर कई दृष्टिकोणों से अपने विचार वयक्त किए हैं। 'अनुराधा रमणन' और 'वासन्ती' जैसी लेखिकाओं ने कुलीन स्त्रियों की समस्याओं पर विचार किए हैं। इसी प्रकार 'सुजाता' नामक क्रांतिकारी लेखक ने स्त्रियों की समस्याओं पर समाज का ध्यान आकृष्ट किया है। धन ऐंठने की दृष्टि से पुलिस, ख्याति प्राप्त टी.वी की अभिनेत्रियों पर व्यभिचार का दोष लगाकर उन्हें कैद कर अन्याय करती है। इससे समाज में उन अभिनेत्रियों के गौरव व ख्याति को धक्का लगता है। केवल सुनी–सुनाई बातों पर पुलिस का अतिक्रमण खण्डन के लायक है। यह मानव अधिकार का प्रश्न है। इस पर सुजाता ने बहुत सी कहानियाँ लिखी है।

इस प्रकार मानव अधिकार के प्रश्नों पर तमिल के लेखकों ने कहानी व उपन्यासों के माध्य से पुलिस की अराजकता का पर्दाफाश किया है। शिक्षित जनसमुदाय में भी मानव अधिकार के प्रति लोग जागरूक नहीं है। इन अधिकारों के प्रति लोगों में जनजागृति पैदा करना अधिक आवश्यक है।

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाती है कि तमिल के सभी साहित्यकारों ने अपनी–अपनी रचनाओं में मानव अधिकारों से संबंधित विविध सरोकारों को गहराई से रेखाकिंत करने का प्रयास किया है।

***

प्रेमचंद के उपन्यासों में सामाजिक चेतना और मानवाधिकार

डॉ. सुमन बंसल*

मानव अधिकारों की अवधारणा मनुष्य और समाज के स्वस्थ एवं कल्याणकारी संबंधों को लेकर उद्‌भूत हुई है। व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है और निश्चित ही उसे समाज से और समाज को उससे कुछ अपेक्षाएं जुड़ी हुई हैं। मनुष्य अपने सुख–दुख, उत्थान–पतन, स्वास्थ्य–अस्वास्थ्य, शिक्षा–अशिक्षा, जीवन–मरण के लिए स्वयं उत्तरदायी होता, किन्तु एक विकासशील राष्ट्र अपने नागरिकों को स्वस्थ, शोषण रहित, स्वाभिमान युक्त, सुविधा सम्पन्न एवं सुसंस्कृत जीवन जीने का अधिकार प्रदान करता है। ये ही मानव अधिकार हैं जो मनुष्य के जीने के अधिकार के साथ जुड़े हुए हैं, इनसे रहित जीवन गुलामी की मानसिकता से भरपूर एवं अभिशप्त होता है। ऐसे में किसी भी राष्ट्र व समाज पर प्रश्न चिन्ह लगना स्वाभाविक हो जाता है। सारे नियम –.कानून और व्यवस्था मनुष्य के हित के लिए हैं, जिनकी छत्रछाया में वह अपने को सहज, स्वाभाविक, स्वतंत्र एवं सुखी अनुभव करता है। जब–जब व्यक्ति और समाज के मध्य यह सामंजस्य व तालमेल बिगड़ा है तब–तब मानवता कराह उठी है और समय–समय पर इसी संत्रस्त व पीड़ित मानवता को प्रतिभाशाली एवं उदारचेता क्रांतिदर्शियों ने अपनी वाणी में स्वर दिया है, इसके विरूद्ध आवाज़ उठाई है। ये क्रांतिदर्शी राजनेता, समाज सुधारक और साहित्यकार भी हुए हैं।

हम एक ऐसे ही क्रांतिकारी तथा कलम के सिपाही के साहित्य की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं तथा जिन्होंने अपनी लेखनी उस वक़्त उठाई (सन् 1901 से 1936) जब भारत परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, परिस्थितियाँ एक युगान्तकारी आंदोलन की प्रतीक्षा कर रही थीं। चाहे नगर हो अथवा गाँव सर्वत्र जीवन संत्रास, अभाव और शोषण की पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था। पं. जवाहर लाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'हिन्दुस्तान की कहानी' में उस युग का चित्रण करते हुए लिखा है, "किसान जड़, दरिद्रता ग्रस्त, उत्पीड़ित और अपने दुर्भाग्य को रोने वाला था और हाथ पर हाथ

*अध्यक्ष, हिंदी विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा।

धरे बैठा हुआ, सरकार, जमींदार, साहूकार, छोटे सरकारी अफ़सर, पुलिस, वकील और छोटे–छोटे पंडे, पुजारियों द्वारा शोषित हो रहा था।"

ऐसे युग में मुंशी प्रेमचंद के रूप में एक ऐसी विलक्षण प्रतिभा हमारे सामने आती है जो स्वयं कलम की मजदूरी से निर्वाह करते हुए सामान्य वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, और अपनी वाणी तथा शिल्प कौशल से अपने युग को इतिहास के पन्नों में अमिट बना देती है। प्रेमचंद का साहित्य न केवल अपने युग का प्रतिबिंब है वरन् साहित्य को नई दिशा प्रदान करनेवाला पहला संकेत और आंदोलन भी है। प्रेमचंद से पूर्व कभी भी सामान्य जनता कृषक और श्रमिक वर्ग को साहित्य का आलम्बन नहीं चुना गया था। प्रेमचंद ने पहली बार सामान्य जन को साहित्य में नायक बना कर प्रस्तुत किया।

प्रेमचंद मानवता के सच्चे पक्षधर हैं। मानवता को प्रस्तुत करने और उसे न्याय दिलाने की लड़ाई ही उनके साहित्य का मूल उत्स है। प्राचीन धर्म में मनुष्य को परलोक में सुखी बनाने का संकल्प था पर नई मानवता पर आधारित धर्म मानव में मनुष्य को इसी मनुष्यलोक में सुखी बनाने का संकल्प है और स्पष्ट ही इस युग के साहित्य में पुरानी धर्म भावना के विरूद्ध गामी दृष्टिकोण का विकास हुआ और फलस्वरूप आचारों, विश्वासों अैर क्रियाओं के मूल्यों में बड़ा अंतर आ गया। प्रेमचंद ने अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'गबन' में अपने एक पात्र से कहलाया "जो यह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है इस पर तो मुझे हंसी आती है। यह मोक्ष और उपासना अहंकार की पराकाष्ठा है जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है। जहाँ जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है वहीं ईश्वर है। जीवन को सुखी बनाना ही मोक्ष और उपासना है। ज्ञानी कहता है होंठो पर मुस्कुराहट न आवे, आँखों में आँसू न आवें और मैं कहता हूँ अगर तुम हँस नहीं सकते, रो नहीं सकते, तो तुम मनुष्य नहीं पत्थर हो। वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले ज्ञान नहीं कोल्हू है।" इस उदाहरण में प्रेमचंद की मानवता संबंधी जो विचारधारा उभर कर आई है, वह उनकी मानव, मानवता और मानवाधिकारों में आस्था को बड़े प्रबल रूप में प्रकट कर रही है। वास्तव में उसी युग में मानवता का सर्वाधिक हनन हुआ और हनन् की पराकाष्ठा ही न मानव अधिकारों की घोषणा का सबब बन गई।

प्रेमचंद के उपन्यासों की सर्वप्रमुख विशेषता उसकी जनवादी भावना है। प्रेमचंद भारत की उस प्रजा के चित्रकार है जिसके जीवन में राजतंत्रों के बदलने के साथ भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ जो प्रजा मुगलकाल से अब तक अपने आँसुओं में ही जीती आई है प्रेमचंद उन्हीं आँसुओं के कलाकार हैं। उनके उपन्यासों में आर्थिक शोषण और सामाजिक अत्याचार के विरूद्ध कृषक वर्ग की पूँजीभूत घृणा और कटुता की झलक मिलती है। उनमें उस पूँजीवाद या पश्चिमी सभ्यता के बढ़ते प्रभाव के विरूद्ध निम्न मध्यवर्ग के विरोध के भी दर्शन होते हैं, जो इस युग में इस देश में भी व्याप्त हो रही थीं और वास्तव में यही व्यवस्थाओं का बदलाव और विश्व में बढ़ता असंतुलन, निम्न मध्य वर्ग का विश्वव्यापी असंतोष, मानव अधिकारों के रूप में एक संवैधानिक सुरक्षा कवच के रूप में 10 दिसम्बर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा घोषित किया गया।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में अतीत गौरव का पुराना राग नहीं गाया और न ही भविष्य की अनोखी कल्पनाएं कीं। वे ईमानदारी के साथ अपने वर्तमान काल का विश्लेषण करते रहे। उन्होंने देखा कि बंधन भीतर का है बाहर का नहीं। एक बार अगर ये किसान, ये ग़रीब यह अनुभव कर सकें कि संसार की कोई भी शक्ति उन्हें दबा नहीं सकती, तो वे निश्चय ही अजेय हो जाएंगे। बाहरी बंधन उन्हें दो प्रकार के दिखाई दिए, एक तो भूतकाल की संचित स्मृतियों का जाल और दूसरे भविष्य की चिंता से एकत्रित धनराशि। एक का नाम है संस्कृति और दूसरे का नाम राजनीति। 'गबन' उपन्यास में मौजी पात्र कहता है – "मैं भूत की चिंता नहीं करता, भविष्य की परवाह नहीं करता। भविष्य की चिंता हमें कायर बना देती है और भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर रूढ़ियों और विश्वासों तथा इतिहास के मलबे के नीचे दब जाते हैं और इतनी शक्ति ही नहीं रहती कि उठ सकें। जो शक्ति – स्फूर्ति मानव धर्म को पूरा करने में लगानी चाहिए थी, सहयोग में, भाईचारे में लगानी चाहिए थी वह पुरानी दुश्मनी का बदला लेने और बाप –दादों का ऋण चुकाने में भेंट हो जाती है।

मानवधर्म के लिए संकल्पबद्ध होने की यह आकांक्षा ही प्रेमचंद के उपन्यासों का मुख्य उद्धेश्य है, जो इंसान को भूत और भविष्य के मिथ्या – बंधनों से छुड़ा कर वर्तमान में जीने की प्रबल जिजीविषा को व्यक्त कर रही है "कुर्वन्नेह

कर्माणि" एवं "जीवेम् शरदः शतम" का उद्‌घोष करने वाली भारतीय संस्कृति वस्तुतः वर्तमान में कर्मरत रहते हुए जीवन को जीना ही परम लक्ष्य मानती है और निश्चित ही सारे मानवाधिकार इसीलिए हैं कि हम स्वस्थ, प्रसन्न, स्वावलंबी एवं संपन्न रहकर वर्तमान दायित्वों का निर्वाह कर सकें।

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में जहाँ एक ओर शताब्दियों से पददलित, अपमानित और निरीह कृषकों की आवाज़ को बुलन्द किया वहीं दूसरी ओर पर्दे में क़ैद पग–पग पर लांछित, अपमानित नारी को उसका सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए विविध तरीकों से नारी का चित्रण किया। प्रेमचंद ने देखा, नारी जो समाज परिवार की एक महत्वपूर्ण इकाई है, परिवार की नींव है तथा जिस पर परिवार और समाज के सारे सदाचार टिके हुए हैं उसे कहीं भी उसका उचित स्थान नहीं मिला। उस पर दुनिया के दायित्वों का बोझ लाद दिया जाता है पर अधिकार उसे एक भी नहीं मिलता। नारी से पोषित होकर भी समाज उसका शोषण करते नहीं अघाता। इसलिए आपने अनमेल विवाह, दहेज प्रथा तथा वेश्यावृत्ति आदि अनेक कुरीतियों पर पुरज़ोर प्रहार किए एवं नारी शिक्षा एवं विधवा विवाह को प्रश्रय दिया।

सेवा सदन निर्मला, प्रतिज्ञा आदि कई उपन्यास आपने विशेष रूप से नारी जीवन की समस्याओं को केंद्रित करके ही लिखे। 'सेवा सदन' की नायिका सुमन जो एक निरीह संस्कारी स्त्री है वह परिस्थितियों एवं उपेक्षा का शिकार होकर वेश्यावृत्ति को विवश हो जाती है। 'निर्मला' में माँ–बाप की आर्थिक विपन्नताओं के कारण नायिका एक वृद्ध को ब्याह दी जाती है। उस पर भी कुठाराघात एक और यह था कि उन लड़कों के प्रति लाख सच्ची होने पर भी वह लांछित होती है और नरक तुल्य जीवन व्यतीत करती है। 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में प्रेमचंद ने विधवा पूर्णा की दयनीय स्थिति का हृदय विदारक चित्रण करके विधवा विवाह की वकालत की है। अन्य उपन्यासों में भी उन्हें जहाँ अवसर मिला नारी के विविध शोषित रूपों का चित्रण करके शोषण के विरूद्ध जनमत तैयार करने की चेष्टा की है। उदाहरणार्थ 'प्रेमाश्रम' में विद्या के रूप में नारी की असमानता का तथा 'कायाकल्प' में बहु विवाह के अभिशाप का चित्रण किया है। वास्तव में नारी की पीड़ा में उनकी अपनी पीड़ा प्रकट हो रही है जो नारी को एक मानव का अधिकार दिला ना चाहती है।

सामाजिक समस्याओं के चित्रण के साथ–साथ जब प्रेमचंद की व्यापक दृष्टि समूचे देश पर गई तो उन्हें सर्वाधिक शोषण गाँवों का होते दिखा। उन्होंने देखा ग्रामीण अंचल में व्यक्ति अपने अंधविश्वासों, परंपरागत रूढ़ियों एवं कुरीतियों के अतिरिक्त दोषपूर्ण अर्थतंत्र के कारण पिस रहा है और इनके शिकंजे से छूटना उसकी सामर्थ्य से बाहर है ऐसे में आपने अपने उपन्यासों में ज़मींदारी प्रथा के विरूद्ध आवाज़ बुलंद की और अन्य कुप्रथाओं पर भी प्रहार किया। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में उन्होंने इन ग्रामीण समस्याओं को विशेष रूप से उजागर किया है, इस उपन्यास को कृषक जीवन का महाकाव्य कहा जा सकता है। प्रेमचंद ने सबसे पहले इसी उपन्यास में भूमि के पैतृक अधिकार को चुनौती दी थी, 'भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की जो ईश्वरीय इच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। राजा देश की रक्षा करता है इसलिए वह 'कर' ले सकता है किन्तु उसके अतिरिक्त किसी अन्य वर्ग को कृषक से मिल्कियत, जायदाद, मीराज या लगान के नाम पर धन वसूलने या दुर्व्यवहार करने का अधिकार नहीं है। इस प्रथा को समाज का कलंक बताकर कृषकों के मानव अधिकार का पोषण किया। अपने अंतिम और महत्वपूर्ण उपन्यास 'गोदान' में प्रेमचंद ने होरी के रूप में निर्धन, परन्तु परिश्रमी किसान की दुर्दशा का मार्मिक चित्रण करके ज़मींदारों एवं साहूकारों द्वारा भारतीय कृषक के शोषण की करूण कहानी कही है। इस उपन्यास में प्रेमचंद का दृष्टिकोण घोर यथार्थवादी रहा है जिस पर किसी आदर्शवाद का आवरण चढ़ाने का प्रयास उन्होंने नहीं किया। यह दायित्व, पाठक, समाज या राज्य पर छोड़ दिया कि वह एक आम इंसान का इस हद तक होता हुआ शोषण देखकर स्वयं निर्णय करे कि उसे क्या न्याय मिलना चाहिए? उसके अधिकारों की रक्षा कैसे होनी चाहिए? लेकिन यह सच है कि गोदान के समस्त पात्रों के प्रति लेखक की सहानुभूति है, उसने श्रमिक वर्ग के अधिकारों की वकालत पग–पग पर की है। किसान – मजदूरों की मेहनत पर पलने वाले ज़मींदारों, सूदखोर महाजनों, पण्डे व पुजारियों तथा मिल मालिकों के जीवन की आलोचना प्रेमचंद जी ने उसी शिद्दत से की है जैसे कोई क्रांतिदर्शी या समाज सुधारक कर सकता है। डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा लिखते हैं-- प्रेमचंद जी ने समाज के असाधारण वर्गों की ओर से दृष्टि हटाकर मध्यम तथा निम्न श्रेणी के लोगों की नित्य प्रति की समस्याओं की ओर हिंदी पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया। किसान, मज़दूर, क्लर्क,

दुकानदार, ज़मींदार, साहूकार, अफ़सर और पूँजीपतियों से संघर्ष का जैसा जीवन्त रूप प्रेमचंद जी ने चिन्हित किया, उनसे पहले वैसा कभी नहीं हुआ था। यह मानने में किंचित भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि प्रेमचंद का साहित्य निम्न मध्यवर्ग की पीड़ित मानवता को उनका वास्तविक जीवन का अधिकार दिलाने के लिए ही लिखा गया था। वह बेबस, बेआवाज़, दलित, कुचले हुए लोगों की आवाज़ बुलंद करने के लिए ही लिख रहे थे, उनकी अंतिम श्वासों तक लेखन का यह सिलसिला चलता रहा। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे सशक्त आलोचक भी प्रेमचंद जी की कलम की इस ताकत को स्वीकार करते हुए लिखते हैं, "अगर आप उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार–विचार, भाषा–भाव, रहन–सहन, आशा–आकांक्षा, दुख–सुख और सूझ–बूझ जानना चाहते हैं तो प्रेमचंद से उत्तम परिचायक आपको नहीं मिल सकता। झोंपड़ियों से लेकर महलों तक, खोमचे वाले से लेकर बैंकों तक, गाँव से लेकर धारा सभाओं तक, आपको इतने कौशलपूर्वक और प्रामाणिक भाव से कोई नहीं ले जा सकता।[2]"

आज़ादी से पूर्व भारतीय समाज का सच्चा दर्पण, मानव की कहानी और युग का इतिहास हमें यदि कहीं मिल सकता है तो वह प्रेमचंद के कथा साहित्य में ही मिल सकता है। जिसको पढ़ कर हम सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि मानव अधिकारों की घोषणा कोई एकाएक लिया गया निर्णय नहीं था वरन् इस स्थिति तक पहुँचने के लिए मनुष्य को सदियों की गुलामी, दुर्दशा और बेबसी का ज़हर पीना पड़ा था और मनुष्य की इस अवमानना, अवहेलना और अपमान की सच्ची तस्वीर अगर कहीं मिलती है तो वह प्रेमचंद के कथा साहित्य में।

***

मानव का दानव होना उसकी हार है, महामानव होना चमत्कार है और मनुष्य का मानव होना उसकी जीत है। **डा. राधाकृष्णन**

कैदियों के लिए शिक्षा का अधिकार

कुंवर विजय प्रताप सिंह*

जेलों में सुधार लाने की आधुनिक धारणा में .कैदियों के लिए शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका पर विशेष ध्यान देना अनिवार्य है। सामाजिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो हम इस बात से कदापि इन्कार नहीं कर सकते कि .कैदी भी हमारे समाज का एक अंग हैं और उन्हें भी अपने समाज के साथ जुड़े रहने का अधिकार है। अतः यह नितान्त आवश्यक है कि उन्हें इस योग्य बनाया जाए कि जब वे जेलों से छूटें तो सम्मानपूर्वक जीवनयापन कर सकें। शिक्षा उनके ज्ञान में वृद्धि करके उनकी रुचियों एवं क्षमताओं के अनुसार कार्य करने में उन्हें सक्षम बनाने में विशेष भूमिका निभा सकती है। चीन के प्रसिद्ध दार्शनिक कन्फ यूशियस ने भी कहा है, शिक्षा के बिना बुदधिमान भी मूर्ख बन जाता है, जबकि शिक्षा और ज्ञान से मूर्ख भी बुदधिमान बन जाता है। अतः .कैदियों को भी शिक्षा का अधिकार प्राप्त होना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र तथा भारत के राष्ट्रीय मानवीय अधिकार आयोग के विभिन्न निर्देशों के अनुसार भी .कैदियों को विशेष तौर पर शिक्षा का अधिकार मिलना चाहिए।

मॉडल प्रिज़न मैनुअल (2003) के अनुसार, शिक्षा का क़ैदियों के चतुर्मुखी विकास में योगदान है। शिक्षा के माध्यम से उनका बाह्य व्यक्तित्व, आदतें और जीवन का प्रयोजन भी बदला जा सकता है। क़ैदियों की शिक्षा से समाज भी लाभान्वित होगा और क़ैदी अपने पुनर्निवास और आत्म–पूर्ति के योग्य होंगे। शिक्षा से अपराध की प्रवृति कम होती है। इसका अर्थ है कम अपराध, कम गवाह, कम क़ैदी, अधिक सामाजिक एवं सभ्य लोग, समाज में अधिक उत्पादकता और अपराध, न्याय और क़ानूनों को लागू करने में कम व्यय। शिक्षा व्यक्ति का शारीरिक और मानसिक विकास ही नहीं अपितु सर्वोमुखी विकास करती है। इसके माध्यम से व्यक्ति को ज्ञानवान बनाया जा सकता है। उसके चरित्र एवं आंतरिक व्यवहार को भी परिवर्तित किया जा सकता है। यह क़ैदियों को सामाजिक वातावरण के अनुसार तालमेल बिठाकर समाज में पुनः स्वयं को सम्मानपूर्वक जीवन यापन के योग्य बनाती है।

***भारतीय पुलिस सेवा, (पंजाब संवर्ग), संप्रति, वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक, अमृतसर**

हिमाचल प्रदेश हाई–कोर्ट ने गुरदेव सिंह और अन्य बनाम हिमाचल प्रदेश (1992 कर्नल आई – जे) में जेलों में शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से क़ैदियों की कुशलता और क्षमताओं में सुधार लाने पर बल दिया है। केरल हाई–कोर्ट (1993 कर्नल आई – जे 3242) ने भी सैंट्रल जेल में सज़ायाफ़्ता अपराधी के मूलभूत मानवीय अधिकार को ध्यान में रखते हुए शिक्षा और मनोरंजन की सुविधाएं देने पर विशेष ज़ोर दिया है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने 2004.05 की वार्षिक रिपोर्ट में जेलों में शिक्षा और मनोरंजन के क्षेत्र में ग़ैर सरकारी संगठन के महत्वपूर्ण योगदान का उल्लेख किया है।

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने मार्च, 2000 को पत्र न0 68/5/97–98 में कैदियों को पाठ्य – सामग्री, शैक्षणिक सुविधाएं उचित मात्रा में देने का निर्देश जारी किया है ताकि उनकी क्षमताओं का विकास करके उनके व्यक्तित्व का उत्थान किया जा सके।
वे दिशा–निर्देश निम्नलिखित हैं :–

- क़ैदियों को भी सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अधिकार है, भले ही वे जेलों में बंद हैं। अतः उनकी क्षमताओं के अनुसार उनके विकास का उचित प्रबंध अनिवार्य है ताकि वे समाज का पुनः निर्माण करके उत्पादक नागरिक बनें तथा समाज के विकास में योगदान दे सकें। क़ैदियों की पाठ्य – सामग्री पर किसी विशेष कारण के बिना कोई रोक नहीं होनी चाहिए।
- उपरोक्त पर प्रकाश डालते हुए यह कहा जा सकता है कि सभी क़ैदियों के मनोरंजन और उनकी क्षमताओं व व्यक्तित्व के विकास के लिए उनकी रुचि और क्षमता के अनुसार जेल में भी उनकी शिक्षा पर ध्यान दिया जाना चाहिए।
- प्रत्येक जेल में क़ैदियों के लिए पुस्तकालय होना चाहिए। जहां प्रत्येक प्रकार के क़ैदियों के लिए मनोरंजक और ज्ञानवर्धक पुस्तकें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होनी चाहिए। क़ैदियों को पुस्तकालय का भरपूर लाभ उठाने के लिए समय–समय पर उचित प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

- जेल के अधिकारियों द्वारा विभिन्न प्रकार के क़ैदियों के आंतरिक व्यवहार के अनुसार उचित समय पर विभिन्न प्रकार के मनोरंजक और ज्ञानवर्धक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए। कैदी औरतों की शिक्षा का भी उचित प्रबंध होना चाहिए। ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन करते समय उनकी शैक्षणिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का भी ध्यान रखना चाहिए।
- क़ैदियों को बाहर से भी पाठ्य–सामग्री प्राप्त करने की अनुमति होनी चाहिए, बशर्ते यह सामग्री उचित मात्रा में हो और इससे सुरक्षा कुप्रभावित न हो। अदालतों को पाठ्य–सामग्री के प्रति संकीर्ण नहीं होना चाहिए। प्रत्येक क़ैदी की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार उन्हें अधिकतम पाठ्य–सामग्री प्रदान करनी चाहिए।
- पाठ्य–सामग्री के विषय–वस्तु के संदर्भ में जेल के अधीक्षक का क़ानूनी मार्गदर्शन होना चाहिए। उसमें कोई भेदभाव नहीं होना चाहिए।

न्यूनतम मानक कानून (सं. रा. संघ 1955) ने क़ैदियों के लिए शिक्षा पर विशेष ज़ोर देते हुए कहा है कि सभी क़ैदियों की क्षमता के अनुसार उन्हें लाभान्वित करने के लिए उनकी उच्च शिक्षा का विशेष प्रबंध होना चाहिए। जहां कहीं संभव हो देश में व्याप्त धार्मिक विश्वासों का भी ध्यान रखा जाए और प्रशासन को इसकी तरफ़ विशेष ध्यान देना चाहिए। व्यावहारिक तौर पर जहां तक संभव हो क़ैदियों की शिक्षा भी देश की शैक्षणिक प्रणाली के अनुरुप होनी चाहिए ताकि जेल से छूटने के उपरांत वे बिना किसी कठिनाई के अपनी शिक्षा पूर्ण कर सकें।

क़ैदियों से बर्ताव के लिए मूल सिद्धान्त (सं0 राष्ट्र संघ, 1990) के अनुसार व्यक्तित्व के संपूर्ण विकास के लिए सभी क़ैदियों को सांस्कृतिक गतिविधियों तथा शैक्षणिक कार्यक्रमों में भाग लेने का अधिकार है।

मॉडल प्रिज़न मैनुअल (2003) यह स्पष्ट करती है कि जेल का जीवन अरुचिकर, कठोर दिनचर्या वाला होता है। शैक्षणिक गतिविधियां क़ैदियों को अपने मन से निराशाजनक विचारों को निकालकर मनोरंजन का अवसर प्रदान

करती हैं। हमें इस वास्तविकता को स्वीकार करना चाहिए कि अपराधियों को जेल की बंद दीवारों में केवल क़ैद रखना ही नहीं अपितु उनमें शैक्षणिक परिवर्तन लाना भी नितान्त आवश्यक है।

पंजाब जेल मैनुअल में भी कैदियों के लिए शैक्षणिक और मनोरंजक सुविधाओं का प्रावधान है। जबकि पंजाब की जेलों में कैदियों के लिए इस संदर्भ में संस्था की ओर से कोई विशेष प्रयास नहीं किए गए। हालांकि बहुत से स्थानों पर इस संदर्भ में व्यक्तिगत प्रयास किए गए हैं। जेल में दी जाने वाली शिक्षा का प्रत्यक्ष संबंध कैदियों की अपराधजनक परिस्थितियों के साथ होना चाहिए।

गार्मन (2002) के अनुसार अपराधियों को शिक्षा प्रदान कर नवीन जीवन आरंभ करने में सहायता करके अपराधों की संख्या में कमी लाई जा सकती है। इस प्रकार स्थानीय और राज्य सरकारों के ख़र्च में कमी लाकर पर्याप्त धन राशि बचाई जा सकती है। अतः जेलों के क़ैदी भी विशाल अमरीकन समुदाय के सदस्य हैं और इस बात की पुष्टि करना कि जेल से रिहा होने के पश्चात् वे समाज के शिक्षित, उत्पादक, करदाता नागरिक बनें, एक अच्छा विचार है। शिक्षा प्रणाली सृजनात्मक शिक्षा के अवसर प्रदान करके कैदियों के जीवन में महत्वपूर्ण परिवर्तन ला सकती है।

सन् 2005 में ब्रिटिश पार्लियामैंट द्वारा बैरी श्रीमान की अध्यक्षता में कैदियों की शिक्षा के स्तर की जांच के लिए एक सेलेक्ट कमेटी का गठन किया गया जिसके अनुसार इंग्लैंड में क़ैदियों की शिक्षा में सुधार लाने की आवश्यकता है ताकि अपराधियों को बार–बार अपराध करने से रोका जा सके। इस कमेटी के अध्यक्ष श्री बैरी वृमान के अनुसार चाहे सरकार ने कैदियों के शिक्षा स्तर में सुधार लाने के लिए संसाधनों को बढ़ाया है परंतु अभी भी वे उनके वायदे के अनुसार परिपूर्णता, गुणवत्ता और पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है। एक अनुमान के अनुसार पुनः अपराध की प्रवृत्ति रखने वाले व्यक्ति कर अदा करने वालों के लगभग 11 मिलियन धन का उपभोग प्रति वर्ष कर रहे हैं।

शिक्षा कैदियों के पुनर्वास और उनको सुरक्षित रोज़गार प्रदान करने में सहायक है। कमेटी के अनुसार क़ैदियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुसार उच्च गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए। कमेटी ने इस विचार पर ज़ोर दिया कि युवा अपराध प्रवृत्ति में कमी लाने के लिए कैदियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण देकर वास्तव में उन्हें नौकरी के योग्य बनाना अनिवार्य है।

प्रसिद्ध लेखक वाका के अनुसार साहित्य यह प्रमाणित करता है कि जो क़ैदी 1990 से शैक्षणिक कार्यक्रमों में उपस्थित रहे हैं वे रिहा होने के पश्चात् पुनः जेल के कटु वातावरण में नहीं जाना चाहते। अधिकांश राज्यों में अध्ययन के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि जहां अपराधियों की उचित शिक्षा का प्रबंध हुआ है वहां अपराध प्रवृत्ति में कमी आई है। उचित प्रकार के शैक्षणिक कार्यक्रमों में अपराधियों का सम्मिलित होना उनकी हिंसक प्रवृत्ति को कम करके जेल में सकारात्मक वातावरण पैदा करता है। प्रभावी शैक्षणिक कार्यक्रम वे हैं जो क़ैदियों को अपनी सामाजिक क्षमताओं, कलात्मक विकास और तकनीकी विकास के साथ अपना भावनात्मक विकास करने में सक्षम बनाते हैं। इन कार्यक्रमों में औपचारिक शिक्षा, तकनीकी शिक्षा और सामाजिक शिक्षा सम्मिलित हैं।

अमृतसर की सैंट्रल जेल में शैक्षणिक प्रोजैक्ट

2006 में आरंभ किया गया शैक्षणिक प्रोजैक्ट, सैंट्रल जेल अमृतसर में सुधार लाने की बहुद्देशीय नीतियों का महत्वपूर्ण अंग है। इस प्रोजैक्ट का उद्देश्य कैदियों के समय का सदुपयोग तथा उनमें सकारात्मक और सृजनात्मक विचारों का विकास करना है ताकि उनके मन में उत्पन्न अपराध भावना का स्थान सृजनात्मकता ले सके। ये गतिविधियां क़ैदियों को केवल शिक्षा ही प्रदान नहीं करती बल्कि उन्हें तनाव–प्रबंधन भी सिखाती हैं। ये गतिविधियां उन्हें व्यस्त रखकर उनके तनाव के स्तर को कम करती हैं। परिणामस्वरूप ये उन्हें जेल के अंदर और बाहर समाज के लिए सकारात्मक और सृजनात्मक कार्य करके अपना योगदान देनेयोग्य बनाती है। यह राष्ट्र के मानवीय संसाधन विकास में भी सहायक है।

कैदियों के द्वारा कैदियों को शिक्षा

अमृतसर सैंट्रल जेल में शिक्षा प्रणाली अपने आप में अनुपम है क्योंकि यह एक स्वपोषित प्रणाली है। इस प्रोजैक्ट के द्वारा क़ैदियों के द्वारा ही कैदियों को शिक्षित किया जा रहा है। केन्द्र के मुख्य अध्यापक भी क़ैदी हैं जिन्होंने एम. एस. सी. या पी. एच. डी. की डिग्री प्राप्त की है। विभाग के कार्यरत सदस्यों में अधिकांशतः स्नातक और स्नातकोतर हैं। क़ैदियों मे हर स्तर पर समन्वयक और सहायक समन्वयक नामित किए गए हैं। जेल के स्कूल में विभिन्न विषयों के 50 से अधिक शिक्षक हैं। उनमें से अधिकतर गुरु नानक देव विश्वविद्यालय और इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय से उच्च कोर्स कर रहें हैं। यह उनमें आत्म संतुष्टि और आत्म सम्मान की भावना जगाता है। यह उन्हें सृजनात्मक तौर पर व्यस्त रखने में सहायक है, और यह उनकी क्षमता का सकारात्मक प्रयोग करने का भी उचित मार्ग है।

यह प्रोजैक्ट विभिन्न स्तरों पर आरंभ किया गया है। प्राथमिक तौर पर अमृतसर सैंट्रल जेल में पाँच विभाग शुरू किए गए :–

उच्च शिक्षा

यह विभाग उन विद्यार्थियों को तैयार करता है जो बी ए, एम ए, ज्ञानी, एम बी ए और स्नातकोतर में डिप्लोमा करने की कोशिश कर रहे हैं।

निरंतर शिक्षा का प्रावधान

इस विभाग के द्वारा दसवीं और बारहवीं करने के इच्छुक क़ैदियों का उचित मार्गदर्शन किया जाता है तथा उनके लिए पुनश्चर्या कक्षाओं का भी आयोजन किया जाता है। पंजाब स्कूल परीक्षा बोर्ड और राष्ट्रीय ओपन स्कूल द्वारा इनकी परीक्षाएं ली जाती हैं।

भाषाओं का स्कूल

इस विभाग में क़ैदियों के लिए भाषागत शिक्षा का प्रावधान है। उनको पंजाबी, हिंदी और अंग्रेज़ी पढ़ना एवं लिखना सिखाया जाता है। जहां शिक्षित क़ैदी शिक्षकों का कार्य कर रहे हैं वहां अंग्रेज़ी स्पीकिंग कोर्स भी प्रचलित हैं। विदेशी क़ैदी भारतीय भाषाओं को सीखने में विशेष रुचि लेते हैं।

कम्प्यूटर की शिक्षा

कम्प्यूटर की मौलिक शिक्षा देने के लिए कम्प्यूटर की शिक्षा का भी विशेष प्रबंध है।

शत – प्रतिशत शिक्षा का प्रसार

यह कोर्स अनपढ़ क़ैदियों को शिक्षित करने के लिए आरंभ किया गया है।

700 से अधिक क़ैदी इस प्रोजैक्ट के साथ जुड़े हैं। जून 2006 में इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय और गुरु नानक देव विश्वविद्यालय से 125 इनमेट्स ने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। लगभग 100 छात्र दसवीं और बारहवीं की परीक्षाओं में बैठे, लगभग 100 क़ैदी विद्यार्थियों ने कम्प्यूटर कोर्स किए और 250 ने भाषागत विकास की कक्षाओं में प्रवेश लिया। लगभग 250 इस जेल में शिक्षित हैं।

गुरुनानक देव विश्वविद्यालय अमृतसर का प्रशिक्षण केंद्र

गुरु नानक देव विश्वविद्यालय ने अमृतसर सैंट्रल जेल में कैदियों को निःशुल्क तकनीकी प्रशिक्षण देने के लिए प्रशिक्षण केंद्र शुरू किया है। वर्तमान काल में वहां निम्न तीन कोर्स करवाकर प्रमाणपत्र दिए जा रहे हैं।

1. कंम्पूटर बेसिक्स
2. इलैक्ट्रॉनिक्स एंड टी वी मेंटेनैंस
3. ड्रैस डिज़ाइनिंग, कटिंग एंड टेलरिंग (महिलाओं हेतु)

विश्वविद्यालय कुछ और कोर्स शुरू करने की भी योजना बना रही है उदाहरणतः कारपैंटरी एंड फ़ैब्रिक पेंटिंग। इन कोर्सों की अवधि छः माह है। ये केंद्र प्रौढ़ शिक्षा प्रचार एवं प्रसार विभाग द्वारा मान्यता प्राप्त है और उसी के प्रबंधन में हैं। विश्वविद्यालय ने अपने वार्षिक बजट में इस संदर्भ में ख़र्च का प्रावधान रखा है। अमृतसर सैंट्रल जेल के इस केंद्र का उद्घाटन डॉ किरण बेदी द्वारा 27 मई 2006 को किया गया।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय का केंद्र

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने जेल में विशेष अध्ययन केंद्र शुरु किया है। क़ैदियों के लिए शुरू किए गए कुछ प्रसिद्ध कोर्सों का उल्लेख इस प्रकार है:—

- मानवाधिकार में प्रमाण पत्र
- मार्गदर्शन में प्रमाण पत्र
- पर्यावरण शिक्षा में प्रमाण पत्र
- भोजन एवं पोषण में प्रमाण पत्र
- बैचलर प्रैपरेटरी कार्यक्रम
- व्यवसाय प्रशासन निष्णात

यहां यह उल्लेख करना अनिवार्य है, कि अधीक्षक और उपाधीक्षक सहित बहुत से अधिकारी भी इनमें से कुछ कोर्स कर रहें हैं। इनमें से अधिकतर मानवाधिकार प्रमाण पत्र कोर्स कर रहे हैं।

कंम्प्यूटर कोर्स

कंम्प्यूटर शिक्षा को तकनीकी शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में शुरू किया गया और इस जेल में इसकी बहुत मांग है। सौ से अधिक छात्र कम्प्यूटर कोर्स करने के इच्छुक हैं जबकि 25.25 छात्रों को लेकर प्राथमिक स्तर पर कम्प्यूटर कोर्स के दो बैच शुरु किए गए हैं। यहां कुशल और इच्छुक शिक्षक उपलब्ध हैं जिन्होंने एम सी ए और कम्प्यूटर साइंस में एम. एस. सी. की है। जेल से रिहा होने पर कैदियों को समाज में अच्छी नौकरी दिलाने में कंप्यूटर कोर्स बहुत सहायक हैं। यह कोर्स इग्नू की और से शुरू किए गए कोर्स सर्टिफ़िकेट इन कम्प्यूटिंग के समान स्तर का है ताकि छात्रों को डिग्री प्राप्त करने के पश्चात् नौकरी प्राप्त करने में कठिनाई न हो। यहां यह उल्लेख करना अनिवार्य है कि स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा यहां कम्प्यूटर दिए गए हैं। इस समय केंद्र में बीस से अधिक कम्प्यूटर हैं।

शत–प्रतिशत शिक्षा प्रोजैक्ट

अधिकांश अनपढ़ क़ैदियों को इस प्रोजेक्ट के साथ जोड़ा गया है। वर्ष 2006 के अंत में लगभग 300 क़ैदियों ने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की। छात्रों को 10 बैचों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक बैच में 30 छात्र थे। उनकी कक्षाएं बैरकों में शिक्षित क़ैदियों द्वारा ली जाती थीं। प्रत्येक बैरक के लिए एक अध्यापक और एक सह–अध्यापक का प्रबंध किया गया है। पाठ्यक्रम में पंजाबी और मौलिक गणित सम्मिलित हैं।

एजुकेशन प्रोजैक्ट के उप–प्राचार्य को शिक्षा प्रसार अभियान का उत्तरदायी बनाया गया है। शिक्षा प्रसार के संसाधनों और कुशल सेवाओं के संदर्भ में इस प्रोजैक्ट को भी प्रौढ़ शिक्षा विभाग गुरू नानक देव विश्वविद्यालय द्वारा सहायता प्राप्त है। भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर शुरू किए गए सर्व शिक्षा अभियान के साथ भी यह प्रोजेक्ट जुड़ा है। इसलिए जेल के मद से कुछ भी ख़र्च किए बिना यहां पाठ्य सामग्री और अन्य सेवाएं प्राप्त हो रही हैं।

सामुदायिक भागीदारी

इस प्रोजैक्ट को लोगों द्वारा भी पूरी तरह से सहायता प्राप्त है। लोग स्वेच्छा से पुस्तकें, स्टेशनरी एवं अन्य पाठ्य – सामग्री का दान करते हैं। इस प्रोजेक्ट को लागू करने में इंडिया विज़न फ़ाउंडेशन महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। कैदी की पुस्तकें, कंम्प्यूटर और पाठ्य सामग्री देकर इस प्रोजेक्ट को चलाने में सहयोग दे रहे हैं।

वास्तव में अधिकारियों ने इस प्रोजैक्ट का निर्माण इस बात को ध्यान में रखते हुए किया है कि ऐसी गतिविधियों का ख़र्च सरकार को वहन न करना पड़े। जो क़ैदी अपनी फ़ीस और अन्य ख़र्च वहन करने योग्य नहीं वे अपनी मज़दूरी का प्रयोग इसके लिए कर सकते हैं।

अब क़ैदियों के विकास और उन पर शिक्षा के प्रभाव का विश्लेषण किया जा रहा है। अमृतसर सैंट्रल जेल के 300 क़ैदी छात्रों से शिक्षा प्रणाली के विषय में उनकी प्रतिक्रिया जानी गई। 300 में से 195 क़ैदियों ने विभिन्न कोर्सों में प्रवेश लिया और सभी क़ैदियों की यह प्रतिक्रिया थी कि वे इस

प्रोजैक्ट से लाभान्वित हुए हैं। 192 क़ैदियों के अनुसार इस प्रोजैक्ट ने उन्हें जेल में अपने समय का सदुपयोग करने के योग्य बनाया। इसी प्रकार 195 क़ैदियों के अनुसार इस शैक्षणिक कार्यक्रम से जेल से रिहा होने पर वे पुनर्वास के योग्य बनेंगे। उनमें से अधिकांश का विचार यह था कि इस कार्य से उनके व्यवहार और व्यक्तित्व में सकारात्मक परिवर्तन आया है।

उनमें से कुछ क़ैदी जेल से तकनीकी शिक्षा में कुशल होकर निजी व्यापार शुरू करना चाहते हैं। वे इस कार्यक्रम को उनमें पूर्णता लाने में सहायक मानते हैं। उनमें से कुछ यह भी मानते हैं कि जेल से छूटने के उपरांत वे अपने बच्चों का उचित मार्गदर्शन कर पाएंगे।

34 प्रतिभागी शिक्षा केंद्र में अध्यापन का कार्य कर रहे हैं। उनमें से कुछ जेल में आने से पहले भी शिक्षक थे। इनमें से अधिकतर दहेज संबंधी मामलों में अपराधी हैं। उनको जेल के अरुचिकर जीवन में अपने समय का सदुपयोग करके अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो रही है।

जेल में शिक्षा से जुड़े लोग वहां उपलब्ध सुविधाओं से थोड़े बहुत संतुष्ट हैं। इस संदर्भ में उनकी टिप्पणियां नीचे दी गई हैं:–

- जेल में शिक्षा का प्रावधान वरिष्ठ अधिकारियों का सराहनीय कदम है परंतु कनिष्ठ अधिकारी और वार्डन जेल में शिक्षा के विरुद्ध हैं। उनके विचार में यह प्रणाली क़ैदियों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करती है।
- जो क़ैदी शिक्षा केंद्र में छात्र हैं और शिक्षा के क्षेत्र में अपनी सेवाएं दे रहे हैं उन्हें नियुक्त करके विशेष कार्य सौंपने चाहिए और प्रति वर्ष 15 अगस्त के अवसर पर उन्हें रिहा कर देना चाहिए।
- जेल अधिकारियों के अनुसार यह प्रणाली सुधार प्रक्रिया में बहुत सहायक है। शिक्षा अनुशासनबद्धता लाकर दैनिक प्रबंधन में सहायक है। अधिकारियों के अनुसार शैक्षिक प्रोजैक्ट के लागू होने से जेल में हिंसा में कमी आई है। पढ़े – लिखे क़ैदी कार्यालय प्रबंधन में भी सहायता करते हैं।

निष्कर्ष

संयुक्त राष्ट्र संघ, भारत के मानव अधिकार आयोग एवं उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने निर्देशों में क़ैदियों के लिए शिक्षा के अधिकार को मान्यता दी गई है।

- लगभग 25 प्रतिशत क़ैदी अशिक्षित हैं इसलिए क़ैदियों के लिए शत–प्रतिशत शिक्षा प्रसार शुरु करना चाहिए।
- क़ैदियों के सुधार में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है, अतः शिक्षा और तकनीकी प्रशिक्षण का क़ैदियों के लिए विशेष प्रबंध होना चाहिए।
- ग़ैर सरकारी संगठन और महाविद्यालयों की सहायता से जेलों में क़ैदियों के लिए शिक्षा का प्रोजैक्ट शुरू होना चाहिए और इनकी शिक्षा का स्तर देश की शिक्षा प्रणाली के समान होना चाहिए। सर्व शिक्षा अभियान जैसे प्रोजैक्ट जेलों में शुरू होने चाहिए।
- शिक्षित क़ैदियों को प्रोजैक्ट के साथ जोड़कर ख़र्च और संसाधनों को बचाया जा सकता है।
- जेल में शिक्षा समाज सुधार में सहायक है क्योंकि यह पुनः अपराध की प्रवृत्ति को कम करता है।
- तकनीकी शिक्षा जेल से रिहा होने पर कैदियों के पुनर्वास और सुरक्षित रोज़गार प्राप्ति के_लिए अनिवार्य है।

संदर्भ सूची

- मॉडल प्रिज़न मैनुअल (2003) ए बी.पी.आर.एंड.डी
- प्रिज़ंस एंड लॉ इन इंडिया 2007 ए बी.पी.आर.एंड.डी
- गार्मन जॉन : Higher education for prisoners will lower rates for taxpayers - Brief Article - Black Issues in Higher Education, Jan 17, 2002
- जेल मैनुअल पंजाब 1996

• केरल हाई–कोर्ट : (1993 Cr. L.J. 3242)

• राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग : वार्षिक रिपोर्ट (2004-05)

• राष्ट्रीय मानवीय अधिकार आयोग : *Human Rights in Prisons, (Website)*

• United Nations Organisation: *Standard Minimum Rules for the Treatment of Prisoners*, 1955

———: *Body of Principles for the Protection of All Persons under Any Form of Detention or Imprisonment*, 1988

———: *Basic Principles for the Treatment of Prisoners*, 1990

• Vacca, James S: *Educated Prisoners Are Less Likely to Return to Prison (Journal of Correctional Education*), Dec. 2004

भारत के मस्तक का यह कलंक है कि यहां के लोग जाति–पाति में विभक्त है। जहां मनुष्य अछूत और पैर की धूल के समान हैं, वह राष्ट्र कैसे जीवित रह सकता है।

सुमित्रानन्दन पंत

मानव अधिकार और नैसर्गिक न्याय : सूचना के अधिकार के संदर्भ में

प्रोफेसर शिवदत्त शर्मा*
डॉ. प्रीती सक्सेना*

मानव अधिकारों का प्रादुर्भाव नैसर्गिक न्याय के सर्वव्यापी, सार्वभौमिक और सर्व कल्याणकारी सिद्धान्तों से माना जाता है, नैसर्गिक न्याय सुनहरे न्यायिक स्वरूप में मानव तथा सृष्टि के उद्भव से ही प्रारम्भ हुआ है इसकी न्यायिक संकल्पना का आधार दयामय सहृदय समभाव, परोपकार तथा मानवोचित गुणों से प्रस्फुटित होता है, इन समस्त गुणों का समावेश मानव को प्रदत्त नैसर्गिक अधिकारों में विद्यमान रहता है, इसलिए यह स्वीकार करने में कदाचित भी संकोच नहीं होता है, कि मानव अधिकारों का उद्गम तथा जनक नैसर्गिक न्याय है। मानव अधिकार, मानवों के विकास, गरिमा, कल्याण, उत्थान, उन्नति, श्रेष्ठता, सुविधा, प्रोत्साहित करने और उत्कृष्ट शिखर पर पहुँचाने के साधन हैं। मानव अधिकारों का लक्ष्य, उद्देश्य और साध्य लोकतन्त्रात्मक तथा जनतन्त्रात्मक शासन – पद्धति एवं सरकारों के माध्यम से लोगों तथा जनता की सहभागीदारी, शासन संचालित करने में सुनिश्चित करना है। शासनात्मक क्रिया – कलाप का सुगम तथा सफल संचालन तभी संभव हो सकता है जबकि संबंधित शासन की जनता को शासन के कृत्यों एवं कार्यों की सूचना तथा जानकारी नियमित सरल तथा पारदर्शिता के आधार पर मिलती रहे अथवा प्राप्त होती रहे। इस प्रकार की जानकारी का क्षेत्र केवल लोकतन्त्रात्मक प्रकृति की शासन पद्धति में ही संभव है। लोकतन्त्रात्मक सरकार का गठन जनता के द्वारा किया जाता है, ये सरकारें जनता की होती हैं तथा ये सरकारें जनता के लिए होती हैं इसलिए जनता को अपने सर्वांगीण विकास के लिए मानव अधिकारों के रूप में सरकार से सूचना प्राप्त करने का संविधानिक दायित्व प्राप्त है। इस

* आचार्य, विधि विभाग, असम विश्वविद्यालय, सिलचर 788001 (असम)

* विभागाध्यक्ष, मानव अधिकार, विधिक अध्ययन संकाय, लखनऊ विश्वविद्यालय (उत्तर प्रदेश)

प्रकार सूचना प्राप्त करने का अधिकार मानव अधिकारों का अंग है और इन दोनों अधिकारों का जनक, पथ प्रदर्शक और स्रोत नैसर्गिक अधिकार है।

नैसर्गिक न्याय से उद्भूत मानव अधिकार के अंगात्मक रूप में सूचना अधिकार के तर्कात्मक संकल्पना को निम्नलिखित पद्धति से सिद्ध किया जाना सार्थक तथा समीचीन प्रतीत होता है।

1. नैसर्गिक न्याय, मानव अधिकारों का उद्देश्य तथा सूचना अधिकार का लक्ष्य

मानव अधिकारों की पृष्ठभूमि समता मूलक समाज की परिकल्पना पर केन्द्रित है, समता मूलक समाज सभी मानवों को समान अधिकारों के लक्ष्य को प्रतिबिम्बित करता है। इसके द्वारा समभाव के मापदण्ड के आधार पर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय का वितरण किया जाता है। वितरणात्मक न्याय का व्यावहारिक पक्ष केवल लोकतंत्रात्मक सरकारों की शासन पद्धति में ही संभव है, क्योंकि लोकतंत्रात्मक शासन पद्धति में जनता सर्वोच्च होती है, और उसको सरकार के प्रत्येक कार्य की जानकारी प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार है। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के मूल स्वरूप में ही स्पष्टतः घोषित किया गया है कि मानव अधिकार सभी लोगों तथा राष्ट्रों के द्वारा प्राप्त किए जाने वाले सामूहिक मापदण्ड हैं। घोषित विभिन्न प्रकार के मानव अधिकारों का लक्ष्य समान न्याय तथा समान अधिकारों को मान्यता देना है। इस अधिकार का संबंध मानव की नैसर्गिक भावना से होता है, उसकी जिज्ञासा, आकांक्षा तथा अभिलाषा होती है कि जिस समाज से वह है उसके कार्य–कलाप कैसे संचालित हो रहे हैं तथा उनको संचालित करने वाला क्या कर रहा है?

नैसर्गिक न्याय का मूलभूत तथा आधारभूत उद्देश्य निष्पक्षता, भेदभाव विहीन और मनमानी पूर्ण कार्यवाही को रोकना है। इन आधारभूत उद्देश्यों को सूचना प्राप्त करके सुदृढ़ किया जा सकता है।[1] नैसर्गिक न्याय प्रशासनिक प्राधिकारियों के कार्यों को पारदर्शी बनाए जाने के लिए पक्षपात के विरूद्ध सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। इस सिद्धान्त को लागू करने से प्रशासनिक प्राधिकारियों के उत्तरदायित्वपूर्ण तथा जवाब देहीपूर्ण तथा ज़िम्मेदारीपूर्ण कार्य सुस्पष्ट होते है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सूचना के अधिकार का सृजन किया गया है इसलिए सूचना अधिकार की उद्देशिका

में उद्धृत किया गया है कि "विधि के द्वारा लोक प्राधिकारियों के नियंत्रण की सूचनाओं को जनता को प्राप्त करने का अधिकार होगा, इस अधिकार से लोक प्राधिकारियों के कार्यों में पारदर्शिता और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य को प्रोत्साहन मिलेगा"[2]

मानव अधिकारों का सृजनात्मक एवं व्यावहारिक पक्ष राष्ट्र की सर्वोच्च विधि संविधान में परिलक्षित होता है। भारत के संविधान की उद्देशिका के अनुसार संविधान को भारत के लोगों को एक संपूर्ण प्रभुत्व – संपन्न समाजवादी, पंथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए अंगीकार किया गया है।[3] इसी तरह सूचना के अधिकार की प्रस्तावना अथवा उद्देशिका भी स्पष्ट करती है कि भारत के संविधान द्वारा लोकतंत्रात्मक गणराज्य की स्थापना की गई है।[4] लोकतंत्रात्मक गणराज्य की मांग रहती है कि लोक जनता के प्राधिकारियों के प्रति जवाबदेही हों और उनके कार्यों में पारदर्शिता हो।[5] लोकतंत्रात्मक सरकार के गठन का बीजोत्पादन नैसर्गिक न्याय से हुआ है। नैसर्गिक न्याय सरकार में जनता की सहभागीदारी अनिवार्य मानती है। सहभागीदारी के अप्रत्यक्ष स्वरूप के अनुसार सरकार के कार्यों को नियंत्रित करना जनता का परम दायित्व होता है। इस दायित्व का निर्वहन जनता के द्वारा सरकार के कार्यों की सूचना प्राप्त करने के पश्चात् उस सूचना के आधार पर कार्यों की सत्यता, असत्यता, न्यायित पक्ष तथा कार्यों की गुणवत्ता पर नियंत्रण किया जाता है। इस तरह प्रारम्भिक अथवा प्रथम दृष्टि में यह कहना उचित तथा सम्यक प्रतीत होता है कि नैसर्गिक न्याय की एक शाखा मानव अधिकार है तथा इस शाखा की एक टहनी सूचना का अधिकार है।

2. नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों में मानव अधिकार के स्वरूप में सूचना के अधिकार का प्रतिबिम्ब

नैसर्गिक न्याय के प्रमुख सिद्धांतों में पक्षपात के विरूद्ध नियम, सुनवाई का अधिकार तथा विनिश्चय देने के लिए समर्थन में कारणों का उल्लेख किया जाना है। पक्षपात के विरूद्ध नियम का मूलभूत निर्णायक प्राधिकारी तथा प्रशासनिक प्राधिकारी का स्वतंत्र एवं निष्पक्ष होना अनिवार्य है। इस सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य प्रशासनिक प्राधिकारियों पर जनता के विश्वास का सुदृढ़ होना है।

न्याय का उद्देश्य केवल न्याय किया जाना ही नहीं है, अपितु न्याय किया गया भी प्रतीत होना चाहिए इसलिए पक्षपात के विरूद्ध नियम के आधार पर प्राधिकारियों की मनमानी दुराशय और असंगतता के मापदण्डों पर चुनौती दी जाती है। पक्षपातपूर्ण कार्यवाही को प्रशासनिक अधिकारियों की अयोग्यता मानी जाती है। पक्षपात के विरूद्ध नियम का प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा अनुपालन किए जाने से मानव अधिकारों को लागू करने में सुगमता होती है, लोकतंत्र में अधिकतर कार्य प्रशासनिक अधिकारियों के द्वारा ही संचालित किए जाते हैं, इसलिए प्रशासनिक अधिकारियों को पक्षपात के विरूद्ध नियम का अनुपालन करना परम आवश्यक है। सूचना के अधिकार का मूलभूत तथा सर्वोच्च उद्देश्य शासन, प्रशासन तथा सरकार के कार्यों में पारदर्शिता लाना है। इस पारदर्शिता के सम्यक अनुपालन के लिए लोक प्राधिकारियों पर सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 की धारा 4 द्वारा दायित्व आरोपित किया गया है कि वह जनता की जानकारी के लिए विभागीय अथवा प्रतिष्ठान के कार्यों की 16 बिन्दुओं पर पुस्तिका तैयार करेगा तथा इसको जनता के अवलोकन तथा इसमें से प्रतियाँ प्राप्त करने के लिए उपलब्ध कराएगा। इसके अतिरिक्त धारा 3 में स्पष्ट किया गया है कि "इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन रहते हुए सभी नागरिकों को सूचना प्राप्त करने का अधिकार है" इसका भावार्थ यह है कि प्रशासनिक प्राधिकारी अपने दायित्व के अन्तर्गत नागरिकों को उसके मानव अधिकार के रूप में सूचना उपलब्ध कराने के लिए बाध्य है। इस प्रकार सूचना उपलब्ध कराने वाले प्रशासनिक प्राधिकारी कार्य संपादित करते समय सजगता से कार्य करते हैं, क्योंकि उनको ज्ञात है कि सूचना अधिकार के अन्तर्गत उनके कार्यों की पारदर्शिता का परीक्षण किया जाना अनिवार्य है। पारदर्शिता तथा निष्पक्षता की संकल्पना का केन्द्र – बिन्दु नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त हैं। आज यह अपरिहार्य है कि प्रशासनिक निकायों के क्षेत्राधिकार तीव्र गति से बढ़ रहे हैं। यदि राज्य के अभिकरण के प्राधिकारी अपने कार्यों का निष्पादन ऋजु और न्याय पद्धति से नहीं करेंगे तो विधि के शासन की वैधता समाप्त हो जाएगी। इसलिए न्यायिक रूप से कार्य किए जाने की आवश्यकता कुछ नहीं है, अपितु इसकी अनिवार्यता और आवश्यकता है कि प्रशासनिक कार्यों का संचालन न्यायिक और ऋजुपूर्ण पद्धति से होना चाहिए न कि मनमानी अथवा स्वेच्छाचारी पद्धति से ।"

न्यायमूर्ति हेगड़े द्वारा अभिव्यक्त की गई अभिधारणा का अभिप्राय यह था कि प्रशासनिक प्राधिकारियों का कार्य ऋजु तथा न्यायिक पद्धति पर आधारित होना चाहिए। प्राधिकारियों अथवा प्रशासनिक अधिकारियों के कार्यों में न्यायिक सिद्धान्तों का समावेश तभी संभव है जब अधिकारियों को यह विदित हो कि उनके कार्यों को लोक सूचना अथवा व्यक्तिगत सूचना के माध्यम से भविष्य में किसी को भी उपलब्ध कराया जा सकता है। न्यायमूर्ति हेगड़े का यह कहना उचित ही था कि प्रशासनिक निकायों के क्षेत्राधिकार तथा कार्य तीव्र गति से बढ़ रहे हैं। इस प्रकार की तीव्रता में निश्चित रूप से कार्यों की निष्पक्षता के लिए आवश्यक है कि सूचना अधिकार को मानव अधिकार के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए तथा इसका प्रादुर्भाव नैसर्गिक न्याय के रूप में अंगीकार किया जाना चाहिए।

प्रो. साठे का भी अभिमत है कि सूचना का अधिकार नैसर्गिक न्याय के अन्तर्गत सुनवाई का अधिकार है। उनका मत है कि आज सुनवाई का अधिकार केवल न्यायिक प्रक्रिया के विपरीत संकल्पना अथवा पहलू पर ही लागू नहीं होता है, अपितु आज इसे सरकार के पारदर्शिता के कार्यों में भी लागू किया जाता है। इसको अनेक समविधियों द्वारा मान्यता प्राप्त है। दस्तावेज़ तथा सूचना प्राप्त करना खुले समाज का एक आवश्यक तत्व है। इसका अर्थ है कि सूचना का अधिकार सुनवाई के अधिकार में सम्मिलित है। सुनवाई के रूप में सूचना प्राप्त करने के अधिकार के अनुपालन किए जाने से लोकतंत्रात्मक प्रक्रिया तथा सरकारी प्रक्रिया में जनता को वास्तविक रूप से सहभागीदारी सुनिश्चित करने का अवसर प्राप्त होता है। इस अनुपालन में सरकारों को सही दिशा में कार्य करने तथा सक्रिय होने का अवसर प्राप्त होता है। इससे लोकतंत्र प्रबल होता है और लोकतंत्र में निवास करने वाले लोग उन्नत तथा उचित लाभ प्राप्त करते हैं। सूचना प्राप्त करने से ही टिकाऊ विकास की संभावनाए सुदृढ़ होती हैं। संप्रति समाज में निवास करने वालों की जागरूकता में सुदृढ़ता का तत्व प्रगति के पथ पर सचल है। आज सूचना प्रौद्योगिकी तथा आर्थिक ज्ञान का युग प्रारम्भ हो गया है इसलिए प्रत्येक व्यक्ति सरकारों से अपेक्षा करता है कि वह अपने कार्यों में खुलापन प्रतिबिम्बित करे।

सूचना प्राप्त करने के अधिकार के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय ने महाराष्ट्र राज्य परिषद् उच्च माध्यमिक शिक्षा पारितोष में कहा कि छात्रों को अपने प्रश्नों के उत्तर पुनः मूल्यांकन करवाने, देखने अथवा उससे संबंधित सूचना प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त नहीं है न्यायालय में इस संबंध में महाराष्ट्र सरकार द्वारा बनाए गए विनियम को उचित बताया और कहा इस प्रकार के मामले परिषद् के स्वायत्तशासी कार्यों के अंतर्गत आते हैं, परिषद् ही उत्तम न्यायाधीश है कि किस प्रकार परीक्षाएं संचालित की जानी चाहिए तथा पुनः मूल्याकन के लिए किस प्रकार की प्रक्रिया का अनुपालन किया जाना चाहिए इसलिए छात्रों को पुस्तिकाओं का अवलोकन कराया जाना संभव नहीं है।

न्यायालय ने यह भी कहा कि परिषद् तथा विश्वविद्यालयों को अपने कार्यों में पारदर्शिता लाने के लिए परीक्षा, नियमों में परिर्वतन किया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि एक विद्यार्थी को विश्वविद्यालय अथवा परिषद् के समस्त दस्तावेज़ दे देने चाहिए। सूचना निश्चित तथा निर्दिष्ट दस्तावेजों से संबंधित ही दी जानी चाहिए।

कोई विद्यार्थी परीक्षा में अनुचित साधनों का प्रयोग करता है तो उसको विश्वविद्यालय के अभिलेखों की समस्त प्रतियां प्राप्त करने का अधिकार नहीं प्राप्त है। [13] इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने मोहम्मद रोफ़ उल इजाम बनाम कुलपति, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय[14] में यह भी अभिनिर्धारित किया है कि अनुचित साधन का प्रयोग करने वाले विद्यार्थी को दण्ड दिए जाने पर दण्ड से संबंधित अनिवार्य दस्तावेज़ों को दिखाया जाना चाहिए। यदि किसी विद्यार्थी की अभ्यास पुस्तिका में परीक्षा से पूर्व लिखी हुई पर्ची रह जाती है, तो ऐसी परिस्थिति में उसको अभ्यास पुस्तिका दिखाई जानी चाहिए, क्योंकि यह पर्ची दण्ड देने के लिए उत्तम साक्ष्य होगी।

संप्रति सूचना अधिकार अधिनियम 2005 प्रवर्तन में है।[15] इस अधिनियम की धारा 8 तथा 9 में सूचना दिए जाने से अपवर्जन की जाने वाली अनिवार्य सूचनाओं का उल्लेख किया गया ह।[16] इससे छात्रों को परीक्षा की उत्तर पुस्तिकाओं को दिखाये जाने से संबंधित बिंदु को स्पष्ट करते हुए पूर्णपीठ के

माध्यम से संघ लोक सेवा आयोग तथा कर्मचारी चयन आयोग आदि के द्वारा दायर अपील में कहा है कि "विभिन्न परीक्षाओं की जांची गयी उत्तर–पुस्तिकाएं अभ्यार्थियों को नहीं दिखाई जाएंगी आयोग ने अपना अभिमत अभिव्यक्त करते हुए कहा है कि परीक्षा मूल्याकंन से अभिभावक और छात्र कभी संतुष्ट नहीं होंगे, सभी विश्वविद्यालयों तथा परिषदों की परीक्षा के पुनर्मूल्याकंन की अपनी प्रक्रिया है, इसका प्रयोग पूरी ईमानदारी से अनुकूल मामलों में किया जा सकता है। आयोग ने यह भी कहा है कि जिन प्रतिष्ठानों में परीक्षा को आयोजित करने के लिए तथा इसकी प्रक्रिया को सम्यक रूप से लागू करने की उपादान नियमावली उपलब्ध है, उन्हें परीक्षा की उत्तर पुस्तिका नहीं दिखानी होगी, लेकिन जिन विभागों का कार्य परीक्षा आयोजित करना नहीं है और यदि वे विभाग नई नियुक्ति या पदोन्नति के माध्यम से परीक्षा के आधार पर अपने विभाग में पदों को भरते हैं, तो क्योंकि उनका कार्य सदैव परीक्षाएं आयोजित किया जाना नही है, इसके लिए सम्यक नियमावली संघ और लोक सेवा आयोग आदि संस्थाओं की तरह नहीं बनी हुई है, इसलिए इन संस्थाओं को परीक्षा उत्तर पुस्तिका अभ्यर्थियों को दिखाई जानी चाहिए।[17]

दिल्ली उच्च न्यायालय ने न्यायमूर्ति बी.डी. अहमद के माध्यम से कहा कि संघ लोक सेवा आयोग एक लोक प्राधिकारी है, इसको ऋजु और पारदर्शी पद्धति से कार्य करना चाहिए इसलिए अभ्यर्थियों को पूर्व वर्ष में प्रथम परीक्षा में प्राप्त अंको को दिखाना चाहिए, न्यायालय ने यह भी कहा कि अभ्यर्थियों को पूर्व वर्षों के स्केलिंग सिस्टम को देखने का अधिकार नहीं है।[18] उपरोक्त अद्यतन विनिश्चयों के अतिरिक्त यह भी विवेचन करना समीचीन जान पड़ता है कि सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 की धारा 8 (1)(छ) के अनुसार यदि किसी सूचना को दिए जाने से किसी व्यक्ति के जीवन अथवा शारीरिक सुरक्षा अथवा सूचना के स्रोत की पहचान अथवा विधि के प्रवर्तन में सहायता अथवा सुरक्षा उद्देश्य से ख़तरा है, तो इस प्रकार की सूचना नहीं दी जायेगी। इस प्रावधान को छात्रों को दिखाए जाने वाली उत्तर–पुस्तिकाओं के प्रश्न पर लागू किया जाना चाहिए। स्पष्टतः यह कहना उचित है कि यदि छात्रों को उत्तर पुस्तिकाएं दिखाई जाएंगी तो उसमें किए गए हस्ताक्षरों से परीक्षक के नाम का भी पता चलेगा, जो अतिगोपनीय होता है तथा परीक्षक

के जीवन को भी खतरा हो सकता है क्योंकि कोई भी विद्यार्थी अपने अंकों से कभी भी संतुष्ट नहीं हो सकता है। यदि ऐसा किया जाता है कि परीक्षा की पुस्तिकाओं को छात्रों को दिखाया जाना है, तो समस्त परीक्षा प्रणाली में परिर्वतन करना आवश्यक होगा, इसके लिए गणितीय तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के स्वरूप को आकार देना पड़ेगा।

3. सूचना अधिकार से संबंधित नैसर्गिक अधिकारों का संविधानिक तथा मानव अधिकार उपबंधों में स्थान

भारत में संविधान में उल्लिखित मूल अधिकारों को नैसर्गिक अधिकारों के नाम से भी जाना जाता है तथा ये अधिकार मानव अधिकारों के स्वरूप में भी विख्यात हैं। इसलिए मूल अधिकारों का अवलोकन करने से विदित होता है कि संविधान के अनुच्छेद 19 (1) में स्पष्टतः उल्लेख किया गया है कि भारत के सभी नागरिकों को वाक स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति की स्वायत्तता का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 19 (2) के द्वारा इस अधिकार पर भारत की प्रभुता और अखण्डता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय अवमाना, मानहानि या अपराध उद्दीपन के संबंध में युक्तियुक्त नियंत्रण जहाँ तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है वहाँ तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे नियंत्रण आरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी।

भारत के संविधान के उपरोक्त उपबंध में यद्यपि स्पष्टतः सूचना के अधिकार को सम्मिलित नहीं किया गया है लेकिन न्यायालयों के निर्वचनात्मक दृष्टिकोण के आधार पर सूचना के अधिकार को अनुच्छेद 19(1) (क) का भाग स्वीकार कर लिया गया है।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा 1948 के अनुच्छेद 19 में उपबंधित है कि प्रत्येक व्यक्ति को राय और अभिव्यक्ति का अधिकार है। यह अधिकार बिना हस्तक्षेप के राय देने का अधिकार तथा सूचना चाहने, प्राप्त करने और प्रदान करने और विचारों को अबाधित रूप से संचार के माध्यम से अभिव्यक्त करने को सम्मिलित करता है।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के अनुरूप ही अन्तरराष्ट्रीय नागरिक और राजनैतिक प्रसंविदा 1966 के अनुच्छेद 19 कि प्रत्येक व्यक्ति को बिना हस्तक्षेप के राय का अधिकार है।[19] प्रत्येक व्यक्ति को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता होगी यह अधिकार सूचना चाहने, प्राप्त करने और प्रदान करने के अधिकार को सम्मिलित करेगा और इसमें सभी प्रकार के विचार भी सम्मिलित होंगे। इनका उपयोग व्यापक रूप से मौखिक, लिखित अथवा मुद्रित रूप मे कला अथवा अपनी स्वेच्छा से किसी रूप में भी किया जा सकेगा।[20] इन अधिकारों के उपयोग के लिए विशेष कर्तव्य और दायित्व भी हैं, इसलिए ये अधिकार कतिपय नियंत्रण के अधीन हैं, लेकिन ये नियंत्रण अति आवश्यक और विधि के द्वारा ही आरोपित किए जा सकते ह। इनमें से नियंत्रण के मुख्य आधार यह होंगे दूसरे के अधिकार का सम्मान तथा प्रतिष्ठा, राष्ट्र की सुरक्षा और लोक व्यवस्था और लोक स्वास्थ्य और नैतिकता आदि। [21]

उपरोक्त अन्तरराष्ट्रीय प्रावधानों के अतिरिक्त विभिन्न अन्य अभिसमयों तथा घोषणाओं में भी सूचना के अधिकार का उपबंध किया गया है। उदाहरणार्थ अन्तरराष्ट्रीय सभी प्रकार के जातीय विभेद का समापन अभिसमय 1996 के अनुच्छेद 7 अमेरिका के लोगों के अधिकारों की घोषणा 1948 अनुच्छेद IV, अमेरिका का मानव अधिकार (पैक्ट ओफ़ सन जोंस कोस्टारिका) अभिसमय 1969 का अनुच्छेद 13, अफ्रीका का मानव अधिकार चार्टर 1981 का अनुच्छेद 19, रोम मानव अधिकार और मूल स्वतंत्रता अभिसमय 1950 का अनुच्छेद 10 और राष्ट्रीय अल्पसंख्या संरक्षा अभिसमय 1995 के अनुच्छेद 10 (3) आदि।

न्यायालय द्वारा सूचना अधिकार को संविधानिक मान्यता– भारत में सूचना अधिकार विधि को अधिनियमित किए जाने से पहले भारतीय न्यायपालिका ने सूचना के अधिकार को संविधान के मूल अधिकार के रूप में विनिश्चित वादों के माध्यम से मान्यता दे दी थी। [22]न्यायालय ने सूचना अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 19(1) (क) के अन्तर्गत मान्यता दी हैं इसमें न्यायालय द्वारा प्रेस के अधिकार को भी सम्मिलित किया है।[23] मेनका गाँधी बनाम भारत संघ[24] के मामले में न्यायालय ने वाक एवं अभिव्यक्ति के

संबंध में विचारों की अभिव्यक्ति के संबंध में कहा था "लोकतंत्र स्वतंत्र वाद–विवाद तथा खुले विचारों पर आधारित है। इसके लिए यह आवश्यक है कि लोकतंत्र में सरकार के कार्यों को उचित तथा सही तरीके से किया जाना चाहिए। यदि लोकतंत्र का अर्थ लोगों की सरकार तथा लोगों के लिए सरकार से है, तो इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को लोकतंत्र की प्रक्रिया में सहभागीदारी करने का अवसर मिलना चाहिए। इस पद्धति में अपने अधिकारों के उपयोग का अवसर प्राप्त करने के लिए जनता को बुद्धिमता के स्वरूप में योग्य बनाया जाना चाहिए"

सूचना के अधिकार का मुख्य आधार प्रेस की स्वतंत्रता है, क्योंकि प्रेस की स्वतंत्रता के माध्यम से ही जन सामान्य को सूचना प्राप्त होती ह। यह अधिकार यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 19(1) में प्रत्यक्षतः स्पष्ट शब्दों में उल्लिखित नहीं किया गया है, लेकिन न्यायालयों द्वारा प्रेस की स्वतंत्रता को अनुच्छेद 19(1) का भाग बनाए जाने के लिए अमेरिका के संविधान के प्रथम संशोधन को आधार माना है जिसमें कहा गया है कि वाक तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अन्तर्गत प्रेस की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है।[25] अमेरिका के संविधान के प्रथम संशोधन को अमेरिका की न्यायालय ने स्पष्टतः प्रेस की स्वतंत्रता के रूप में सूचना प्राप्त करने के अधिकार का अंग स्वीकार करते हुए कलैनडायस बनाम मंडल [26] में कहा है, प्रेस की स्वतंत्रता का उपबंध सूचना और विचारों को प्राप्त करने की स्वतंत्रता देता है। न्यायालय ने यह भी कहा, जनता का अधिकार है कि वह सामाजिक, राजनैतिक और सुरूचिपूर्ण नैतिक और अन्य विचार और अभिव्यक्ति की सूचनाओं को प्राप्त करे। **पी.वी. नरसिम्हा राव बनाम राज्य**[27] के मामले में न्यायालय ने कहा भारत के संविधान के अनुच्छेद 19(1) (क) के अन्तर्गत संसद तथा राज्य विधान मंडल के सदस्यों को क्रमशः अनुच्छेद 105 (1) तथा 194 (1) में उल्लिखित विशेषाधिकार के अन्तर्गत अनुच्छेद 19 (2) के प्रावधानों के प्रतिबंध के बिना सूचना प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त है।

उत्तर प्रदेश राज्य बनाम राजनारायण[28] में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट शब्दों में कहा अनुच्छेद 19(1)(क) में वाक और अभिव्यक्ति के अधिकार के साथ जानकारी प्राप्त करने का अधिकार भी सम्मिलित है। न्यायालय का यह भी मत था कि लोकतंत्र में सरकार के कार्यों की जानकारी प्राप्त करने से

भ्रष्टाचार तथा अन्य अनियमितता में प्रतिबंध लगेगा, अधिकारियों के उत्तरदायित्व का अभिनिर्धारण सुनिश्चित होगा। सचिव, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार बनाम क्रिकेट एसोसियेशन ऑफ़ बंगाल[29] में उच्चतम न्यायालय ने पुनः स्पष्ट कर दिया है कि अनुच्छेद 19(1) के अन्तर्गत सूचना प्राप्त करने तथा सूचना को वितरण करने का अधिकार सम्मिलित है।

दिनेश त्रिवेदी एम.पी. एंड अन्य बनाम भारत संघ[30] में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि सूचना का अधिकार लोकतंत्र में ऑक्सीजन की तरह कार्य करता है, क्योंकि लोकतंत्र खुलेपन की आकांक्षा करता है, खुलेपन से स्वतंत्र समाज का निर्माण होता है।

एसोसियशन फ़ॉर डिमोक्रेटिक रि फ़ोर्म बनाम भारत संघ[31] में दिल्ली उच्च न्यायालय ने कहा कि सूचना का अधिकार निर्वाचन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है। इस प्रकार न्यायालयों ने सूचना की स्वतंत्रता अधिनियम 2002 तथा तद्नुरूप सन 2005 में अधिनियमित सूचना का अधिकार अधिनियम से पूर्व सूचना के अधिकार को भारत के संविधान के भाग तीन में उल्लिखित अनुच्छेद 19(1)(क) के अन्तर्गत स्वीकार कर गया था।

नैसर्गिक न्याय को मानवीय सिद्धान्तों पर आधारित माना जाता है, संप्रति नैसर्गिक न्याय की मानव अधिकारों की संरक्षा के उद्देश्य से नवीन दिशाओं और प्रकार तथा आकारों का प्रादुर्भाव हो रहा है। वर्तमान युग को सूचना प्रौद्योगिक का समय माना जा रहा है। आज लोक कार्यों को लोकहित में संचालित किए जाने पर उन कार्यों की जानकारी जन साधारण को सुलभ कराना आवश्यक माना जा रहा है, विश्व के अधिकतर देशों ने सूचना के अधिकार को सांविधानिक अधिकार के रूप में सम्मिलित कर लिया है। मानवों के सर्वोच्च तथा सर्वांगीण विकास के लिए सूचना के अधिकार की अनिवार्यता तथा आवश्यकता मूलभूत मानव अधिकार के रूप में विकसित हो गयी है। लोक प्राधिकारियों के कार्यों की गुणवत्ता, पारदर्शिता, तथा निष्पक्षता के लिए सूचना अधिकार की मानव अधिकार के रूप में विधिक तथा सांविधानिक मान्यता सुनिश्चित तथा सुस्थापित हो गई है। इस प्रकार इससे वास्तविक स्वराज्य की स्थापना हो रही है।

सन्दर्भः–

1. नैसर्गिक न्याय का पक्षपात के विरूद्ध नियम।
2. सूचना अधिकार अधिनियम 2005 की उद्देशिका।
3. भारत के संविधान की उद्देशिका का प्रथम पैरा।
4. सूचना अधिकार अधिनियम 2005 का द्वितीय पैरा।
5. तत्रैव, तृतीय पैरा।
6. मानक लाल बनाम प्रेम चन्द सिघंनी (डा0) ए.आई.आर.1957 एस.सी. 425।
7. सूचना अधिकार अधिनियम 2005 की धारा 41
8. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 की धारा 21
9. ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 150 ।
10. एस.पी.साठे, एडमिनिस्ट्रेटिव लॉ, सत्रहवां संस्करण 2004 पृष्ठ 233 ।
11. तत्रैव
12. ए.आई.आर. 1984 एस. सी. 1543, बम्बई उच्च न्यायालय ने पारितोष बनाम एम.बी.बी.एस. एज्युकेशन ए.आई.आर.1981 बम्बई 951
13. मोहिन्दर सिंह जमवाल बनाम जम्मू विश्वविद्यालय ए.आई.आर. 1984 जे0एंड के 401
14. ए.आई.आर.1993 इलाहाबाद 1961
15. **सूचना अधिकार अधिनियम विधेयक लोकसभा द्वारा 11 मई 2005।**
16. सूचना अधिकार अधिनियम 2005 की धारा 8 (1) के अन्तर्गत कुल 10 खण्ड हैं।
17. अमर उजाला, 25 अप्रैल 07 पृष्ठ 1।
18. इण्डियन एक्सप्रैस, नई दिल्ली 18 अप्रैल 2007।
19. अन्तरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकारों की प्रसंविदा 1996 अनुच्छेद 19 (1)।
20. तत्रैव अनुच्छेद 19 (2) (क) एवं (ख)।
21. तत्रैव अनुच्छेद 19 (3) (क) एवं (ख)।
22. भारत के संविधान के भाग तीन में उल्लिखित मूल अधिकार सूचना अधिकार अधिनियम 2005 की धारा 2 (घ) में उद्धृत परिभाषा के अनुसार मानव अधिकार हैं।
23. द्वितीय प्रेस आयोग की रिपोर्ट खण्ड –I, 34.35 ।
24. ए.आई.आर. 1978 एस सी 597।

25. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय एसोसियेशन बंगाल ए. आई.आर.1995 एससी 1236।

26. 408, यूएस 753, 763 ।
27. ए. आई. आर. 1998 एस.सी. 2120
28. ए. आई. आर. 1975 एस0सी. 865 ।
29. ए. आई.आर. 1995 एस0सी. 1236 ।
30. (1997) 4 एस0सी0सी0 306 ।
31. ए. आई. आर. 2001 दिल्ली 126 ।

***

गांधी चिंतन एवम् मानव अधिकार

डॉ. प्रतिभा*

ज्ञात और अज्ञात समस्त मानवों के प्रति सद्भाव की इच्छा करने वाले भारतीयों के लिए मानव अधिकार के संगायन की परम्परा अनूठी नहीं है। वर्णाश्रम–व्यवस्था और पुरुषार्थ–चतुष्टय की समाज–नियामक व्यवस्थाओं में कर्तव्यों के साथ–साथ अधिकारों का प्रणयन प्रमाणित करता है कि यूरोप की सुप्रसिद्ध मैग्नाकार्टा घोषणा 1215 ई. से कहीं पूर्व से मानव अधिकार भारतीय संस्कृति के आत्म तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठित रहा है। यद्यपि व्यवस्थित और सर्वमान्य सिद्धान्त के रूप में मानव अधिकार की प्रस्थापना भारत में भी शेष विश्व की भाँति बीसवीं सदी के मध्य की देन है, जब 26 जून 1945 को 50 दशों द्वारा हस्ताक्षरित 'संयुक्त राट्र संघ' की घोषणा में सदस्य देशों द्वारा मानवता के कल्याण हेतु मनुष्य के मूलभूत अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्द्धन का प्रण लिया गया, जिसे कालान्तर में मानव अधिकार आयोग की स्थापना के माध्यम से और पुष्ट किया गया। स्पटतः द्वितीय विश्वयुद्धोत्तर युग में मानव अधिकारों को वैविक और सार्वभौमिक आधार प्राप्त हुआ।

यह मात्रा संयोग नहीं है जब पूरी दुनिया में मानव अधिकार विषयक नियमावलियां गढ़े जाने की प्रक्रिया में थीं, लगभग उसी समय **देवत्व** की कोटि में पहुँचा हुआ एक भारतीय मनुष्य अपने व्यक्तित्व और कर्तृत्व से उनींदी मानवता को जागरित कर मैत्री के एक पाश में बांध सकने का स्वप्न देख रहा था। यह स्वप्नद्रष्टा और कोई नहीं, भारतीय राष्ट्रपिता महात्मा गांधी थे।

भारतीय संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि के रूप में अधिकारों और कर्त्तव्यों को एक ही सिक्के के दो पहलू मानने वाले गांधी जी का विश्वास था कि सभी के द्वारा अपने कर्त्तव्यों का समुचित निर्वहन किये जाने पर अधिकारों के माँग की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। यही कारण है कि गांधी जी एक ही पक्ष की बात कर सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने सदैव भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों

* **इतिहास विभाग,दयानन्द महाविद्यालय, अजमेर।**

से देखे जाने पर सत्य के रूप भी भिन्न–भिन्न होते हैं, इस नियम पर आधारित जैन स्याद्वाद के अनुसार ही सत्य को प्रत्येक पक्ष की ओर देखने का प्रयास किया। सम्भवतः इसीलिए उन्होंने स्वयं के साथ–साथ दूसरे की स्वतंत्रता, मजदूरों के अधिकारों के साथ–साथ मालिकों के प्रति उनके नैतिक दायित्व और वैयक्तिक उन्नति के साथ–साथ सामाजिक, राष्ट्रीय और वैश्विक उन्नति को भी महत्त्व दिया। साथ ही, गांधी जी कोरे आर्दशवादी नहीं थे, इसलिए उन्होंने एतद्विषयक सैद्धान्तिक व्याख्याएं ही प्रस्तुत नहीं कीं, अपितु अनेकशः मानव अधिकारों के लिए पक्ष रखकर और आवाज उठाकर व्यावहारिक उदाहरण भी प्रस्तुत किए। इनमें से अनेक प्रसंग राज्यों और प्रशासनिक अधिकारियों के लिये दिशा–निर्देश के रूप में व्यवहृत हो सकते हैं।

गांधी चिन्तन में दृष्टिगत अधिकारों को यदि आधुनिक संदर्भों में व्याख्यायित करें तो सामान्य वैयक्तिक अधिकार, सामाजिक–सांस्कृतिक अधिकार, राजनैतिक अधिकार, धार्मिक अधिकार और आर्थिक अधिकार के रूप में एक वर्गीकरण हमारे समक्ष उपस्थित हो सकता है।

सामान्य वैयक्तिक अधिकार

इस श्रेणी में सर्वप्रथम जो अधिकार गांधी जी की विचार–सरणि में प्रमुखतः स्थापित है, वह है जीवन का अधिकार, जो प्रत्येक मनुष्य को जीवित रहने के साथ ही शारीरिक सुरक्षा का भी अधिकार देता है। इसके विस्तृत कलेवर में भोजन–प्राप्ति का अधिकार, जीविका–अर्जन का अधिकार, स्वच्छ वायु में स्वास लेने का अर्थात् शुद्ध पर्यावरण में निवास करने का अधिकार और स्वास्थ्य के संरक्षण का अधिकार समाहित है। गांधी जी की दृष्टि में जीवन के इस अधिकार की व्याप्ति स्त्री–पुरुष रूपी मानव–मात्र से होकर सम्पूर्ण चराचर जगत् तक थी। पशु–पक्षियों को भी जीने का उतना ही अधिकार वे देते हैं, यह मानते हुए कि जो प्राणी जितना ही अधिक लाचार है, उतना ही अधिक वह मनुष्य द्वारा मनुष्य की क्रूरता से संरक्षण पाने का अधिकारी है।

अकारण नहीं कि गांधी जी की शाकाहार–प्रतिज्ञा जो प्रारम्भिक तौर पर एक धर्मभीरु और मातृभक्त बालक की प्रतिज्ञा दिखाई पड़ती है, अन्ततः अपने व्रत के औचित्य के विषय में पूर्णतः आश्वस्त व्यक्ति, की सैद्धान्तिक

प्रतिज्ञा में परिवर्तित हो गई। हाँ, कभी–कभी जीवन के त्रासद हो उठने पर दया–मृत्यु का अधिकार भी गांधी जी के विचार में था–पशुओं के लिये भी और मनुष्यों के लिये भी। मृत्यु के मुख में धीरे–धीरे जाने की बेबस और निरुपाय यंत्रणा से मुक्ति यदि मृत्यु द्वारा संभव हो तो वह भी करणीय था उन्हें। इसी प्रकार मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति का अधिकार भी प्रत्येक व्यक्ति को हो और अपने प्रत्येक नागरिक को जीवन–यापन की आवश्यक सुविधाएं सुलभ कराने वाला स्वराज्य ही सुराज्य था उनकी दृष्टि में। नमक जैसी आवश्यक वस्तु के उपभोग के अधिकार को लेकर गांधी जी ने डांडी मार्च और उसके द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन को प्रारम्भ किया। वस्तुतः यह प्रथम अवसर था, जब देश का गरीब से गरीब व्यक्ति स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ जुड़ गया। कारण यह था कि यह आन्दोलन दरिद्र से दरिद्र आदमी के उपयोग में आने वाली नमक जैसी अत्यावश्यक वस्तु पर से कर हटाने के लिए किया गया था।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार भी गांधी जी के लिए अत्यन्त महत्त्व रखता था, क्योंकि मनुष्य को व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करके कोई समाज नहीं रचा जा सकता। इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है कि यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता 'असीम' न होकर 'मर्यादित' हो। किसी व्यक्ति को अपनी प्रतिभा के उपयोग का अधिकार हो, परन्तु यह अधिकार मनमाना नहीं हो और व्यक्ति अपने हित के साथ–साथ समाज के हित की भी सोचे। इसके पीछे का चिन्तन था कि चूँकि व्यक्ति अपने चतुर्दिक विद्यमान सामाजिक संरचना का अंग है। अतः समाज की प्रगति में ही उसकी प्रगति है। अतः उत्कृष्ट होगा कि व्यक्ति को तो वैयक्तिक स्वतंत्रता प्राप्त हो किन्तु यह व्यक्ति स्वयं एक सामाजिक संयम अंगीकार करे और अपने व्यक्तिवाद को सामाजिक प्रगति की अपेक्षाओं के साथ समायोजित करे। इसी में समाज और व्यक्ति दोनों की उन्नति है। इस प्रकार तीन बातें जो प्रमुखतः उभर कर आती हैं, वे हैं–

1. व्यक्ति को वैयक्तिक स्वतंत्रता प्राप्त हो,
2. सामाजिक प्रगति में ही वैयक्तिक प्रगति निहित है, तथा

3. व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक सामाजिक संयम बरते।

वर्तमान युग में महत्त्वपूर्ण **अन्वेषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता** का अनुभव गांधी जी से बेहतर शायद ही अन्य कोई कर सकता था। चम्पारन सत्याग्रह की सुचारु तैयारी किसानों की शिकायतों की गहन जाँच–पड़ताल और बारीक छानबीन से ही संभव हो सकी थी। इसी प्रकार अन्य अवसरों पर भी गांधी जी प्रत्येक समस्या का सिरे से अन्वेषण कर ही उसके समाधान के लिए कदम उठाते थे। एवमेव **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता** को भी 'स्वराज की आधारशिला' मानते हुए वे पर्याप्त महत्त्व देते थे। इस अभिव्यक्तिक स्वतंत्रता में भी महत्त्वपूर्ण तथ्य यही था कि स्वयं की एतद्विशयक स्वतंत्रता के साथ–साथ दूसरों को भी ऐसी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए, विशेषकर भारत जैसे बहुधर्मी, बहुजातीय दश में यह बहुत आवश्यक है।

व्यक्ति के **शैक्षिक अधिकार,** को मान्यता देते हुए गांधी जी शिक्षा की सर्वसुलभता के पक्षधर थे। **'सा विद्या या विमुक्तये'** के नीतिवाक्य के अनुसार, क्योंकि विद्या चित्त की शुद्धि, इंद्रियों के निग्रह, निर्भयता, स्वावलम्बन, जीवन–निर्वाह तथा स्वातंत्र्य–प्रेम का माध्यम है अतः किसी राष्ट्र की शिक्षा नीति का निर्धारण 80–85 प्रतिशत जनता के हितों को ध्यान में रखकर ही हो। यही नहीं, शिक्षा **स्वभाषा** में ही प्राप्त हो, तभी प्रत्येक घर और प्रत्येक गांव तक इसकी व्याप्ति हो सकेगी । यहाँ तक कि उच्च शिक्षा में भी स्वभाषा ही माध्यम होना चाहिए।

सामाजिक–सांस्कृतिक अधिकार

सामाजिक अधिकारों में जिस अधिकार के सर्वाधिक प्रसंग गांधी–चिन्तन में उपस्थित होते हैं, वह है **सामाजिक समानता का अधिकार।** यद्यपि हिन्दू वर्ण–व्यवस्था में गांधी जी की गहरी आसक्ति थी, तथापि वर्ण–
धर्म के आधार पर किये जाने वाले सामाजिक भेदभाव के वे ऐकान्तिक विरोधी थे। विशेषतः द्विज वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्वारा शूद्र वर्ण के साथ अस्पृष्यता का व्यवहार उन्हें सह्य नहीं था। अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का सबसे अहम पाप बताते हुए उसे अविलम्ब नष्ट करने की सलाह देते हुए गांधी जी ने अस्पृश्यों को सार्वजनिक मेलों, बाजारों, दुकानों, पाठशालाओं, मन्दिरों, कुंओं तथा रेलगाड़ियों आदि में अन्य हिन्दुओं की ही भाँति स्वतंत्र

विचरण के अधिकार की हिमायत को कृपा के स्थान पर भूल सुधार की संज्ञा दी। अस्पृश्य वर्ग के सामाजिक समानता के अधिकार की रक्षा के निमित्त अनेक उपाय भी गांधी जी द्वारा सुझाये गए हैं, जिनमें दलितों के लिए विशिष्ट संस्थाओं और सुविधाओं की महती भूमिका तथा दलितों के परम्परागत कार्यों की प्रकृति से घृणा अथवा अरुचि का भाव त्याग कर उनके विकास और सुधार पर विशेष ध्यान दिए जाने पर बल दिया गया।

स्वयं गांधी जी का सम्पूर्ण जीवन दलितोद्धार के लिए समर्पित था। न केवल विभिन्न प्रकार के रचनात्मक कार्यों, दौरों के द्वारा उन्होंने दलितोत्थान का प्रयास किया अपितु उन्हें हिन्दू समाज के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकारे जाने का आग्रह भी किया। यही कारण है कि सितम्बर 1932 में ब्रिटिश सरकार द्वारा अधिनिर्णय में हरिजनों के लिए अलग निर्वाचन मण्डलों की व्यवस्था का उन्मूलन करने के लिए उन्होंने जेल में ही आमरण अनशन आरम्भ किया और भारत सरकार द्वारा उनकी माँगे मान लिये जाने पर ही अनशन तोड़ा।

वर्ण व्यवस्था के दूषण के परिणाम स्वरूप प्रकट होने वाली जातिगत असमानता के विरुद्ध यदि गांधी जी आजीवन संघर्ष करते नजर आते हैं तो आर्थिक और भौतिक विभेद पर आधारित **शोषण और अन्याय के विरुद्ध अधिकार** के लिए भी उन्होंने आजीवन आवाज उठायी। उनकी दृष्टि में निर्धन, वंचित तबके को अन्याय का प्रतिकार करने, न्याय पाने का उतना ही अधिकार है, जितना सक्षम सबल वर्ग को। दक्षिण अफ्रीकी प्रवास में यूरोपीय मालिक द्वारा प्रताड़ित अनुबन्धित तमिल मजदूर बालासुन्दरम् को न्याय दिलवाये जाने की घटना को इस मानवीय अधिकार की महान गाथा के रूप में अंकित किया जा सकता है। इसी क्रम में, और व्यापक फलक पर धनी समुदायों द्वारा निर्धन समुदायों और शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा दुर्बल राष्ट्रों के नस्लीय और आर्थिक शोषण को भी गांधी जी ने नहीं बख्शा और आर्थिक शोषण का एक माध्यम बनने के कारण मशीनों का भी विरोध वे करते रहे।

स्त्रियों के अधिकार

सामाजिक–सांस्कृतिक अधिकारों में यदि हम स्त्रियों के अधिकारों की अलग से व्याख्या करें तो पाते हैं कि गांधी जी स्त्रियों के लिए भी पुरुषों के ही

समान अधिकारों की अपेक्षा करते थे। वे मानते थे कि ये संस्कार निर्मूल कर देना चाहिए कि पुरुष की अपेक्षा स्त्री का स्थान और अधिकार कम है। न केवल वे स्त्रियों के लिए प्रायः प्रयुक्त 'अबला' सम्बोधन के एकदम विरुद्ध थे, अपितु पुरुष की पाशविक शक्ति के मुकाबले स्त्रियों की नैतिक शक्ति की श्रेष्ठता को बेहिचक स्वीकार करते थे। इसमे अंतर्निहित अनन्त स्त्री शक्ति का परिचय अपनी पूर्ण ऊर्जा के साथ प्राप्त करने के लिये स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष अवसर व अधिकार दिए ही जाने चाहिए। बाल्यकाल में **शिक्षा प्राप्त करने** और वयस्क होने पर **स्वतंत्रता प्राप्त करने** का स्त्री को भी उतना ही अधिकार है, जितना पुरुष को।

गांधी जी ने भारतीय स्त्री से जुड़ी प्रायः प्रत्येक समस्या जिनसे आज भी भारतीय समाज पूर्ण मुक्त होने में सक्षम नहीं हो सका है, पर विचार किया, चाहे वह पर्दा–प्रथा हो अथवा दहेज प्रथा, बाल विवाह हो या फिर बलात्कार। वे स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार, ब्रह्मचर्य पालन का अधिकार, अस्मिता की रक्षा का अधिकार और अनिवार्य होने पर विवाह–विच्छेद का अधिकार प्रदान किए जाने के हिमायती थे।

राजनैतिक अधिकार

राजनैतिक स्वतंत्रता भी गांधी जी की दृष्टि में कम महत्त्वपूर्ण नही थी और यह स्वतंत्रता आधी–अधूरी या संकुचित न होकर अपने सम्पूर्ण एश्वर्य के साथ पूर्ण स्वरूप में हो। वस्तुतः धीमी अथवा आधी–अधूरी स्वतंत्रता जैसी किसी वस्तु के अस्तित्व को सिरे में ही खारिज करते हुए वे कहते हैं – पश्चिम स्वतंत्रता जैसी कोई चीज नहीं है। स्वतंत्रता तो जन्म के समान है। जब तक हम पूर्ण स्वतंत्र नहीं, हम गुलाम हैं। सभी प्रकार के जन्म एक ही क्षण में घटित होते हैं। अधिकार और कर्तव्य के सह अस्तित्व के विश्वासी महात्मा यहाँ भी स्वाभाविक रूप से ही दूसरे राष्ट्र की स्वतंत्रता के भी कामी हैं। किसी अन्य राष्ट्र के शोषण के लिए स्वतंत्रता प्राप्त करने का कोई अर्थ नहीं है। वे खुले रुप में घोषित करते हैं–

"अगर मैं अपने देश की आजादी चाहता हूँ तो मुझे इसे हासिल करने का तब तक कोई अधिकार नहीं है जब तक कि मैं दुनिया की हरेक प्रजाति को, वह दुर्बल हो या सबल, आजादी के इसी अधिकार का उपयोग करने

का सहर्ष अवसर नहीं देता और उनके इस अधिकार की कद्र नहीं करता।"

इस अर्थ में गांधी जी बौद्ध दर्शन के बोधिसत्त्वों की उच्चता का स्पर्श करते प्रतीत होते हैं, जिनकी सर्वोपरि प्राथमिकता अपनी मुक्ति के पूर्व संसार के तमाम प्राणियों की मुक्ति सुनिश्चित करना होता है। इसी क्रम में व्यक्तिगत स्वातंत्र्य और राष्ट्रीय स्वातंत्र्य दोनों को ही आवश्यक बताते हुए गांधी जी अन्तर्राष्ट्रीय स्वातंत्र्य को भी उसी से जुड़ा हुआ अनुभव करते हैं, क्योंकि ये स्वतंत्रताएं एक दूसरे की प्रतिद्वन्दी न होकर पूरक हैं। इस प्रकार गांधी जी की स्वतंत्रता की अवधारणा के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू हैं–

- अपनी स्वतंत्रता के साथ–साथ दूसरे की यथा पड़ोसी की स्वतंत्रता का सम्मान हो।
- व्यक्तिगत स्वतंत्रता सामाजिक प्रगति के साथ समायोजित है।
- स्वतंत्रता शोषण से रहित तथा अहिंसा और सत्य युक्त हों।
- स्वतंत्रता मात्र राजनैतिक न होकर आर्थिक और नैतिक भी हो।

गांधी जी **लोकतंत्र के अधिकार** को भी जनता के लिए आवश्यक मानते थे क्योंकि लोकतंत्र, जीवन को प्रगति की ओर ले जाता है, जबकि भीड़तन्त्र विशुद्ध मृत्यु की ओर। हाँ, यह लोकतंत्र अनुशासित और प्रबुद्ध अवश्य होना चाहिए क्योंकि पूर्वाग्रहयुक्त, अज्ञानमय और अंधविश्वासपूर्ण लोकतंत्र अव्यवस्था को जन्म देकर स्वयं अपना ही विनाश कर लेता है।

न्याय के लिए संघर्ष में पूरा जीवन खपा देने वाले गांधी जी एक स्वतंत्र और लोकतांत्रिक देश में प्रत्येक व्यक्ति को न्याय प्राप्त करने का अधिकारी मानते थे,चाहे वह बहुसंख्यक हो अथवा अल्पसंख्यक, न्याय प्राप्ति की एकमात्र कसौटी कुशलता और योग्यता हो। कानून हाथ में लेने के स्थान पर वे विवादास्पद मामलों को अदालत अथवा मध्यस्थ द्वारा सुलझाने का विकल्प रखते हैं।

धार्मिक अधिकार

गांधी जी के धार्मिक विचार वस्तुतः सभी धर्मो–मजहबों के मूलभूत एकत्व पर आधारित होने के कारण उन सभी के प्रति समभाव से प्रेरित थे। इसीलिए धार्मिक संकीर्णता के स्थान पर पारस्परिक सहिष्णुता का विकास करने के

लिए वे प्रयासरत रहे। हिन्दू धर्म के प्रति उनकी अगाध आस्था के पीछे उनकी पारिवारिक वैष्णव पृष्ठभूमि के साथ–साथ सभी मतों–आस्थाओं को अपने में समेटे हिन्दुत्व की व्यापकता भी एक बहुत बड़ा कारण थी। स्पष्टतः गांधी जी की दृष्टि में क्योंकि सभी धर्म मानव के उन्नयन के लिए हैं, अतः सभी धर्मावलम्बियों को अपने–अपने धर्म के पालन का अधिकार होना चाहिए। यही कारण है कि धर्मांतरण का भी सैद्धान्तिक विरोध उन्होंने किया। स्वयं उनके मन में स्वधर्म की इतनी गहरी पैठ थी कि किसी दूसरे धर्म के लिए अपने धर्म का त्याग करना उनके लिए संभव नहीं था । दक्षिण अफ्रीका में धर्मांतरण के प्रयास से दो–चार होने पर धर्म के प्रति उनकी आस्था को संबल ही मिला। हाँ, नागरिकों में धर्म–सहिष्णुता के स्वाभाविक विकास हेतु अपने धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों की शिक्षा भी धार्मिक शिक्षा की पाठ्यचर्या में दिए जाने का पक्ष उन्होंने लिया।

आर्थिक अधिकार

आर्थिक अधिकारों के क्रम में सर्वप्रथम गांधी जी प्रत्येक व्यक्ति को समाज के हित में **विकास का अधिकार** दिए जाने के पक्ष में थे। विकास के इसी अधिकार को केन्द्र बिन्दु बनाकर गांधी जी ने **सर्वोदय** का सिद्धान्त विश्व को दिया। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की बहुप्रसिद्ध भारतीय परम्परा पर आधारित सर्वोदय अर्थशास्त्र में नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र को समावेशित कर समाज के सबसे दीन–हीन व्यक्ति के उदय से लेकर समर्थों और धनिकों के भी उदय को लक्ष्य बनाया गया।

श्रमिकों के अधिकार

आर्थिक अधिकारों के क्रम में श्रमिकों के अधिकारों का उल्लेख करना भी प्रासंगिक होगा। भिन्न–भिन्न प्रसंगो में अभिव्यक्त गांधी जी के विचारों के अनुसार--

- सर्वप्रथम तो श्रमिक को श्रम का उचित मूल्य प्राप्त होना चाहिए। यह मूल्य कम से कम इतना हो कि वह अपना और अपने अशक्त आश्रितों का निर्वाह संतोषजनक रीति से कर सके।

- श्रमिक को अवकाश और उसके सदुपयोग का अधिकार हो। उसके लिए निर्धारित श्रम का समय इतना ही होना चाहिए कि आराम करने के लिए पर्याप्त समय बचे।
- मनोरंजन तथा सुख सुविधाओं का भी प्रबन्ध हो।
- श्रमिकों को शिक्षण की सुविधाएं मिलें।
- उनके बच्चों के लिए आवश्यक शिक्षा, वस्त्र तथा दूध आदि की व्यवस्था हो।
- श्रमिकों के लिए साफ–सुथरे घर हों।
- श्रमिकों को दाम के साथ–साथ प्रतिष्ठा और सम्मान भी मिले।
- श्रमिकों को हड़ताल का भी अधिकार मिले। हाँ, ये हड़तालें न्यायोचित अवश्य हों। इनका अहिंसक, स्वतःप्रवर्तित तथा उपद्रवविहीन होना भी आवश्यक है।

इस प्रकार गांधी–चिन्तन में संपूर्ण मानवीय सरोकारों के साथ सद्भावपूर्ण आग्रह देखा जा सकता है। यह दीगर बात है कि गांधी ज़ी स्वयं हमेशा एकांकी अथवा एक पक्षीय सत्य के स्थान पर न्यायपूर्ण सत्य के कहीं अधिक नजदीक थे। इसका परिणाम यह हुआ कि सभी पक्षों की संतुष्टि के उच्चतम लक्ष्य को साधने का कठिन कार्य गांधी जी द्वारा बहुत सरलता से किया जा सका।

***

> यह ज्यादा अकलमन्दी की बात है कि हम उस खुदा की बातें कम करें जिसे हम समझ नहीं सकते और इन्सानों की बातें ज्यादा करें जिन्हें हम समझते है।
>
> **ख़लील जिब्रान**

मानव अधिकारों के हनन का एक क्रूर पक्ष : महिलाओं एवं बच्चों का अवैध व्यापार

डॉ. ममता चन्द्रशेखर*

आज हम 21वीं सदी में जी रहे हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार किसी समय मनुष्य रीढ़ विहीन थे और उसकी शारीरिक संरचना भी ऐसी नहीं थी। डार्विन के (सर्वाइवल ऑफ द फिटेस्ट) ''योग्यतम की उत्तरजीविता' सिद्धांत में यह साबित किया कि शक्तिशाली चीज़ें ही संघर्ष में अंततः अपना अस्तित्व बनाए रख पाती हैं। इस प्रक्रिया में कई लाख प्रजातियां लुप्त हो चुकी हैं। आज जब मनुष्य चांद पर अपना झंडा गाड़ रहा है तो यह कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि मनुष्य इस धरती का सबसे बुद्धिमान प्राणी है। इसने न केवल समाज की अवधारणा विकसित की बल्कि सभ्यता और संस्कृति की प्रक्रिया भी इसी मनुष्य ने विकसित की। दुनियाभर में अनेक संस्कृतियाँ हैं जो अपने उत्कर्ष पर हैं। कई संस्कृतियाँ लुप्त भी हो गई। कई आदिवासी संस्कृतियाँ या तो किसी दूसरे मानव समुदाय के साथ विलीन हो गई या प्राकृतिक आपदा और किसी विशेष परिस्थिति में नष्ट हो गई। खैर, यह एक प्रक्रिया है जिसमें कई बार संस्कृतियाँ बनेंगी, विकसित होंगी और फिर नष्ट होंगी। मनुष्य में सीखने और परिस्थितियों के अनुरुप अपने आपको ढालने के गुण हैं। इसी के अनुसार वह अपने भीतर अभिनव परिवर्तन लाता है।

विश्व की एक बड़ी भयंकर समस्या है भूख और गरीबी। लेकिन इससे भी बड़ी समस्या है हमारी विकृत मानसिकता, संकीर्णता और विद्रूपता। मानसिक बदहाली किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। दुनिया में कलह की वजह विद्रूप प्रवृत्तियों का होना है। आज जो तमाम हिंसक घटनाएँ हो रहीं हैं उनका कारण विकृत मानसिकता ही है। आतंकवाद, नस्लवाद और उग्रवाद बुरी प्रवृत्तियों की वजह से जन्म ले रहे हैं, वरना मनुष्य तो सद्प्रवृतियों का धनी है। मन का तथा सद् प्रवृत्तियों का धनी व्यक्ति सर्वदा सुखी होता है। काश ऐसा हो पाता। दुनियाभर में महिलाओं और बच्चों का

---

*सहायक प्राध्यापक, शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इन्दौर, (म.प्र.)

अवैध व्यापार हो रहा है उसकी एक वजह भूख और गरीबी तो है ही, लेकिन उससे भी बड़ी वजह विद्रूप प्रवृत्तियों का होना है।

मनुष्यों द्वारा ही तो ये कर्म किए जा रहे हैं। मनुष्य होकर हमने समाज, सभ्यता और पारस्परिक संबंध विकसित किए थे और हम मनुष्य ही संबंधों की शुचिता को खत्म करके मनुष्यों के अवैध व्यापार में संलिप्त हो गए हैं। यह मानव अधिकारों का हनन है। मानव अधिकार केवल शक्तिशाली व्यक्तियों के अधिकार नहीं है। डार्विन का सिद्धांत मानव अधिकार का पैमाना नहीं है। मानव अधिकार तो सबके हैं। मनुष्य योनि में जन्म लेने मात्र से जो अधिकार प्राप्त हों, वही मानव अधिकार हैं तो फिर अवैध व्यापार का अधिकार किसने दिया? यह हर प्रकार से मानव अधिकारों का घोर उल्लंघन है। शर्मनाक तो यह है कि हम इसे सह रहे हैं। हम इस अनैतिक व्यापार संस्कृति ('ट्रैफिकिंग कल्चर') को विकसित होने में मदद कर रहे हैं। जिन स्त्रियों व बच्चों के साथ यह हो रहा है वह प्रथमतः मनुष्य हैं और उन्हें किसी भी दशा में वस्तु के रूप में बेचा जाना हमारे सभ्य होने पर प्रश्नचिह्न है।

यदि मनुष्य अपने 'मनुष्य धर्म' को भूल जाए तो वह मनुष्य नहीं बल्कि शैतान बन जाता है। हमें उन्हीं शैतानों से निपटना है। उन शैतानी प्रवृत्तियों से निपटना है जो मनुष्य के लिए अभिशाप हैं। मेरी दृष्टि में सबसे बड़ा दोषी राज्य और उससे ऊपर दोषी हम हैं। 10 दिसंबर, 1948 को जब संयुक्त राष्ट्र सार्वभौम घोषणा पत्र जारी हुआ उसी समय राज्यों ने अपनी कुछ जिम्मेदारी पर भी हस्ताक्षर करके संकल्प लिया था। खेद है कि किसी ने अपनी जिम्मेदारी का पालन नहीं किया। खासकर विकासशील देशों में अवैध व्यापार का यह कारोबार बहुत अधिक होता है। भूटान, बांग्लादेश, नेपाल, म्यांमार, भारत से इन महिलाओं और बच्चों की तस्करी होती है। प्रत्येक वर्ष 5 लाख से अधिक बच्चों की बिक्री होती है। यह बच्चे या तो यौन शोषण के लिए खरीदे जाते हैं, या पूंजी निर्माण के लिए। कुछ बच्चों को आतंकवादी बनने के लिए बाध्य किया जाता है। विश्वव्यापी घोषणा पत्र के अनुच्छेद 25 में यह स्वीकार किया गया है कि महिलाएं और बच्चे विशेष देखभाल और सहायता के हकदार हैं। सभी बच्चों को सामाजिक संरक्षण पाने का अधिकार है। 'सशस्त्र संघर्षों का बच्चों पर प्रभाव' जिसे संयुक्त

राष्ट्र महासचिव द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ ग्रासा माशेल ने एक रिपोर्ट के रूप में तैयार किया था, उसको पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस रिपोर्ट में एक बच्ची की आपबीती है। वह कहती है – ***मैं 13 साल की उम्र में छात्र आंदोलन में शामिल हुई थी। मैं हालात बदलना चाहती थी ताकि बच्चों को भूखा न रहना पड़े। बाद में सशस्त्र संघर्ष में शामिल हो गई। मुझे कोई अनुभव नहीं था और एक छोटी लड़की की तरह मैं डर रही थी। मैंने देखा कि लड़कियों को सैनिकों की उदासी दूर करने के लिए उनके साथ मजबूरन यौन संबंध रखने पड़ते थे। हम यह भी नहीं जानते थे कि किसी के साथ जाने पर उदासी कौन दूर करेगा? जब मैं यह सब कुछ याद करती हूँ तो रोम–रोम पीड़ा से कराहने लगता है। मेरी निष्ठा के बावजूद उन्होंने मेरा दुरूपयोग किया। मेरी मानवीय गरिमा और अस्मिता को कुचल डाला"***। सन् 1995 में ही 'एन एजेण्डा फॉर पीस' में तत्कालीन संयुक्त राष्ट्र महासचिव बुतरस–बुतरस घाली ने कहा था कि "युद्ध और संघर्ष की जड़ें गहरी और व्यापक हैं। उन तक पहुंचने के लिए मानव अधिकारों और बुनियादी स्वतंत्रता के प्रति सम्मान बढ़ाने, व्यापक संपन्नता के लिए टिकाऊ आर्थिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देने, पीड़ा को कम करने और व्यापक विनाशकारी हथियारों के उपयोग और उनकी मौजूदगी को समाप्त करने के लिए अथक प्रयास करने होंगे"। लेकिन इस अपील को अनसुना करती राज्य व्यवस्था वह सब कुछ होने दे रही है जो नहीं होना चाहिए।

अभी हम ऊपर एक 13 वर्षीय छोटी बालिका की आपबीती को पढ़ चुके हैं। महिलाएं सबसे ज्यादा संकट में हैं। भूमण्डलीकरण के युग में मुक्त व्यापार को बढ़ावा देने वाली साम्राज्यशाली शक्तियाँ श्रम को मुक्त करके अपनी व्यापकता और आवश्यकता का अहसास करा रही हैं, लेकिन उसके दुष्परिणाम भी हैं। इसकी सबसे ज्यादा कीमत महिलाएं चुकाती हैं। पहले व्यापार छुपे रूप में महिलाओं की तस्करी करके होता था। अब जो व्यापार है वह एक प्रकार से 'मान्य' है। तस्करी की ज्यादा जरूरत नहीं होती। महिलाएं भूमण्डलीकरण के दौर में इधर–से–उधर भेजी जा रही हैं और उनका यौन शोषण – यौन व्यापार के जरिए हो रहा है। सन् 1995 में बीज़िग में महिलाओं पर विश्व सम्मेलन तथा सन् 2000 में स्पेशल सेमिनार

ऑन विमन महासभा में इस विषय पर चिंता व्यक्त की गई थी। महिलाओं के लिए ही एक्शन ऑन प्लेटफॉर्म जैसी अवधारणा विकसित की गई, लेकिन महिलाएं आज भी सुरक्षित नहीं हैं। अवैध व्यापार के ज़रिए पश्चिम के देशों में गरीब मुल्कों से पहुंचाई जा रही औरतों के लिए पूरा रैकेट सक्रिय है। यह अपराध दिन–दूना रात–चौगुना बढ़ रहा है। भारतीय मानव अधिकार आयोग महिलाओं और बच्चों के दुर्व्यापार से चिंतित है, लेकिन सही रणनीतियों के अभाव में खाड़ी देशों तथा पश्चिम में भेजी जाने वाली महिलाओं के लिए, उनकी सुरक्षा, स्वतंत्रता और गरिमा के लिए अभी तक कुछ विशेष नहीं कर सका है। लेकिन, ऐसा भी नहीं है कि वह चुप है। इस पर आयोग की निगाह है। सार्वभौम घोषणा पत्र को पारित हुए 60 वर्ष हो गए, लेकिन हमें अभी कई चुनौतियों से निपटना है। जब तक हम अपनी चुनौतियों और उसकी बारीकियों की पहचान नहीं कर लेते तब तक हम न तो महिलाओं को स्वतंत्रता, गरिमा और समानता दिला सकेंगे और न ही बच्चों को उनका बचपन वापस कर सकेंगे। मानव अधिकारों के लिए और उसके कार्यान्वयन के लिए सत्याग्रह करने का वक्त आ गया है। हमारी सक्रियता में ही मानव अधिकारों का उपयोग है। आज हमें वैश्विक रणनीति के लिए खुले विचार और मानवतावादी विचारधारा से युक्त वैचारिकी की जरूरत है तभी हम इस राष्ट्रीय त्रासदी से लड़कर सभी को निजात दिला पाने में समर्थ हो सकेंगे।

***

मानव अधिकार और मीडिया

अरविंद कुमार सिंह*

मानव अधिकारों की रक्षा में मीडिया की भूमिका काफी महत्वपूर्ण है। मानवाधिकारों के हनन के नाम पर अखबारों में पुलिस हिरासत और जेल हिरासत में होने वाली ज़्यादतियों तथा मौंतों की ख़बरें प्रमुखता से छपती हैं। पर सामाजिक सवालों को जो स्थान दिया जाना चाहिए वह अभी भी नहीं हो पा रहा है। मीडिया में भी निचले स्तर पर ख़ास तौर पर ज़िलों में संवाददाताओं का नेटवर्क कमज़ोर है तथा बहुत से संवाददाता मानव अधिकार जैसे सवालों पर बहुत सी अख़बारी ख़बरों को ही आधार मानकर मानव अधिकार आयोग ने कार्रवाई की है। इस कड़ी में कई बड़े मामले प्रकाश में आए हैं और बहुतों को राहत भी मिली है। हाल में बाटला हाउस मुठभेड़ देश भर में सुर्ख़ियों में आया। मानवाधिकार आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष न्यायमूर्ति एस. राजेन्द्र बाबू ने कहा कि मीडिया मुठभेड़ों और पुलिस हिरासत में मौत के मामलों के बजाय ग़रीबी से उत्पन्न समस्याओं और कुपोषण के कारण होने वाली मौतों और सामाजिक मुद्दों पर अधिक ध्यान दे। आर्थिक रूप से और समस्त सुविधाओं से वंचित लोगों के अधिकारों की रक्षा के मुद्दे पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। इसी तरह सामाजिक मुद्दों पर मीडिया को विशेष ध्यान देना चाहिए। मानव अधिकार से संबंधित ख़बरों के मामले में अख़बारों की तुलना में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया ख़ास चिंता का विषय बना हुआ है। इसी तरह इस विषय पर रेडियो और उसके एफ़ एम चैनलों की भी काफ़ी महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है।

मानव अधिकारों का दायरा बहुत व्यापक है और मीडिया से जुड़े बहुत कम लोगों को आज भी मानव अधिकार से जुड़े सभी पक्षों की जानकारी है। बहुत से मीडियाकर्मियों की संवेदनशीलता पर भी सवाल खड़े होते हैं। कई क्षेत्रीय अख़बारों में दायरा बड़ा होने के नाते ख़ास तौर पर अपराध संवाददाता केवल पुलिस की ब्रीफ़िंग के ही भरोसे रहते हैं और उसकी ओर

---

*वरिष्ठ पत्रकार एवं परामर्शदाता, भारतीय रेल

से ग़लत ख़बरों को भी सच बना कर छाप देते हैं। इसी तरह कई ज़िलों से अगर मानव अधिकार से संबंधित कोई बड़ी ख़बर भी आ जाती है तो ज़रूरी नहीं कि वे अख़बार में छपे ही। 1984 में इलाहाबाद ज़िले में आदिवासियों के एक गांव में पुलिस के भयानक उत्पीड़न की ख़बर करने कुछ पत्रकार साथी पहुंचे। ख़बर हम सबने भेजी पर केवल ख़बर जनसत्ता में छपी और किसी की नहीं। हालांकि इस मामले की गूंज विधानसभा में हुई और दोषियों को सज़ा मिली पर इसे जो प्रमुखता दी जानी चाहिए थी वह नहीं मिल सकी। प्रिंट मीडिया फिर भी ऐसे सवालों पर जगह देता है। लेकिन अधिकतर टीवी चैनल सनसनी को ही प्रमुखता देते हैं। प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया अगर ठोस नीति बना कर चाहे तो मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता के प्रसार में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। पर दिक़्क़तें कई हैं। मीडिया ख़ास तौर पर मानव अधिकारों से जुड़े मामलों के फ़ॉलोअप करने में कन्नी काटता है।

भारत सरकार में कई आयोग ऐसे हैं जिनका मीडिया के साथ संवाद का भी रिश्ता नहीं है। कभी कभार उनके किसी सालाना आयोजनों में ही मीडिया को आमंत्रित किया जाता है। पर खास तौर पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन के बाद से ही मीडिया और आयोग के बीच एक गहरा रिश्ता बना है। इस नाते आयोग की ओर से जारी प्रेस विज्ञप्तियों के साथ न्यूजलेटर और पत्रिकाओं को भी संज्ञान में लिया जाता है। आयोग ने भी मीडिया के साथ सतत संवाद बनाया है और खास तौर पर भाषाई पत्रकार को अपने अभियान से जोड़ने की पहल की है। इसी कड़ी में मानव अधिकारों के संरक्षण और उन्नयन में हिन्दी और दक्षिण भारतीय भाषाओं की भूमिका विषय पर 31 मई तथा 1 जून 2007 को हैदराबाद में आयोजित सेमिनार को महत्वपूर्ण कदम माना जा सकता है। इसी तरह आयोग ने दिल्ली में वरिष्ठ संपादकों तथा कालमिस्टों के साथ 14 अक्टूबर 2005 को सघन संवाद किया था।

लेकिन जमीनी स्तर पर मानव अधिकारों की रक्षा के लिए काम करने वाले पत्रकारों की राह बहुत कठिन है। खास तौर पर ग्रामीण इलाकों में पुलिस और प्रशासन की ज्यादतियों को उजागर करने वाले पत्रकारों को कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। मुंबई जैसे कई मामलों में तो पत्रकारों को समाज की भी काफी आलोचना का शिकार होना पड़ा है। वर्ष

2008 में मुंबई में घटी आतंकवादी घटना के कवरेज को लेकर भारत का मीडिया कटघरे में खड़ा कर दिया गया है। खास तौर पर टीवी चैनलों की भूमिका की तो सर्वत्र निंदा की गयी थी। कई चैनलों ने लाइव कवरेज के नाम पर करीब 60 घंटे का रियलिटी शो या टेरर रियलिटी शो दिखा कर देश भर में न केवल दहशत और सनसनी फैलायी बल्कि सेना और सुरक्षा बलों के काम–काज में भी गंभीर रूकावट पैदा की। यह सवाल भी खड़ा हुआ कि आतंकवादी हमले को नियंत्रित करने के लिए क्या–क्या किया जा रहा है इसे पूरी दुनिया को दिखाने से किसका हित सधता है? मुंबई की घटना को लेकर खुद मीडिया के लोगों ने माना कि कई शीर्ष चैनलों तक ने टी.आर.पी. बढ़ाने के लिए सारी हदें पार कर दी थीं। उनकी हरकतों से ताज होटल में फंसे बंधकों तथा सुरक्षा बलों की जान को भारी खतरा पैदा हो गया था। यही नहीं इस होड़ में कई गलत खबरें भी प्रसारित की गयीं।

चौतरफा आलोचनाओं के बाद मीडिया ने आत्ममंथन भी किया और माना कि उस दौरान का कवरेज अनाड़ी की तरह था। साथ ही यह भी कहा गया कि संकट का कवरेज करने वालों में प्रशिक्षण की कमी, एंकरों द्वारा व्यावसायिकता तथा निजी पूर्वाग्रहों के बीच की सीमाएं लांघना और व्यावसायिक दबाव जैसी बातें भी इसके लिए जिम्मेदार थीं। इस बात के लिए भी दबाव बना कि आपदा की स्थिति में मीडिया की क्या भूमिका हो इस पर दिशानिर्देश तैयार किया जाए।

लेकिन इस तस्वीर के साथ एक दूसरा पक्ष भी है। देश के तमाम इलाकों में हजारों पत्रकार जान जोखिम में डाल कर देश और समाज के लिए काम कर रहे हैं। खास तौर पर हिंसाग्रस्त कश्मीर तथा पूर्वोत्तर के इलाकों में पत्रकारों को काफी जटिल माहौल में काम करना पड़ता है। हाल में अमेरिकी पत्रकार जोएल इलियट की नयी दिल्ली में निज़ामुद्दीन पुलिस ने जैसी पिटाई की, उसका वर्णन सुन कर रोंगटें खड़े हो जाते हैं। जब दिल्ली में यह हाल है तो बाकी इलाकों की तस्वीर का सहज अंदाज लगाया जा सकता है। वैसे तो दुनिया के कई देशों की तुलना में भारत पत्रकारों के लिए आजादी से काम करने की सबसे बेहतरीन जगह माना जाता है, पर पत्रकारिता के समक्ष यहां कम खतरे नहीं हैं। खासतौर पर हिंसाग्रस्त इलाकों में तो हालात बहुत ही कठिन हैं, जहां उनके समक्ष गंभीर दायित्व के साथ जटिल चुनौतियां हैं।

भारत में एक अरसे से कई इलाकों में सशस्त्र टकराव की स्थिति बनी हुई है जिससे निपटने के लिए पुलिस, अर्धसैन्य बलों तथा सेना की तैनाती की गयी है। हालांकि सेना की तैनाती मुख्यतया जम्मू–कश्मीर और पूर्वोत्तर के इलाकों में है, पर देश के कई हिस्सों में आए दिन सेना तैनाती की मांग उठती रहती है। कई जगहों पर विपरीत माहौल में सेना की तैनाती होती भी रहती है। इसी तरह नक्सलवाद के गंभीर चपेट में आंन्ध्र प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल समेत एक दर्जन राज्यों के 127 जिले आ गए हैं। इनमें भी 9 राज्यों के 76 जिलों की हालत काफी गड़बड़ मानी जाती है। इसी प्रकार राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली समेत देश के 14 राज्य सांप्रदायिक दृष्टि से संवेदनशील हैं, जबकि सात राज्यों के 24 जिले जातीय तनाव बहुल हैं। इसी तरह उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में राजनीतिक दलों में गिरोहबंदी तथा कई जातीय सेनाओं का गठन हो चुका है और कई नरसंहार इन हथियारों से हो चुके हैं।

इस माहौल के बीच खास हिंसाग्रस्त इलाकों में बड़ी संख्या में पत्रकार भी तैनात हैं। कई बार वे खुद मानव अधिकारों के उल्लंघन का मामला उठाते–उठाते खुद खबरें बन जाते हैं और उनको शहादत भी देनी पड़तीी है। राजनेता, जवान या अन्य लोग अगर आतंकवादी हिंसा के बीच मारे जाते हैं तो उनको शहीद घोषित किया जाता है, पर पत्रकारों के मामले में ऐसा संबोधन सुनने को नहीं मिलता है। राज्य सरकारें वैसे भी पत्रकारों से कुपित रहती हैं, ऐसे में पीड़ित परिवारों के लिए भी आज तक केन्द्र या राज्य स्तर पर कोई ऐसा तंत्र नहीं बन पाया है जो उनके परिजनों की मदद कर सके।

महानगरों और खास तौर पर केन्द्र व राज्यों की राजधानियों में पत्रकार काफी सुरक्षा के वातावरण में काम करते हैं। उनको बेहतर वेतन और सुविधाएं भी मिलती हैं, पर दुर्गम और खतरनाक इलाकों में निहत्थे और सामाजिक सुरक्षा की गारंटी के बिना बड़ी संख्या में पत्रकार बेहद तनाव के बीच में काम कर रहे हैं। इन इलाकों में फिदायीन हमलों से लेकर बारूदी सुरंगों का खतरा आम बात है। फिर भी पत्रकारों की सुरक्षा का ठोस इंतजाम आज तक नहीं हो पाया है। कभी–कभी पत्रकारों पर बड़े हमलों के बाद जब संगोष्ठी होती है तो उसका निचोड़ यही निकलता है कि यह सब तो व्यवसाय का खतरा है, इसे तो झेलना ही पड़ेगा। शायद यही

कारण है कि नाम मात्र के ही मीडिया संस्थानों में पत्रकारों को बीमा कवर या अन्य सुविधाओं की व्यवस्था की गयी है।

ऐसे माहौल के बीच अंग्रेजी पत्रकारों की तुलना में खास तौर पर हिंदी और भाषाई पत्रकारों को कुछ ज्यादा ही चुनौती झेलनी पड़ती है। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो आम तौर पर राष्ट्रीय एकता, अखंडता और गरिमा–गौरव के प्रति सजग तथा सचेत होने के साथ वे जमीनी सच्चाइयां भी लिखते हैं। लेकिन ऐसा करते समय वे एक तरफ आतंकियों या अराजक तत्वों के हत्थे चढ़ते हैं तो दूसरी तरफ मानव अधिकार उल्लंघन जैसे मामलों में रिपोर्ट छापने पर सुरक्षा बलों की भी नाराजगी मोल लेते हैं। संचार क्रांति के चलते टीवी तथा अखबारों दोनों के पत्रकारों में सबसे पहले खबर देने और ब्रेकिंग या एक्सक्लूसिव खबरों की होड़ मची रहती है। इस नाते कई बार गलत, अतिरंजना भरी या एक तरफा खबरें भी कुछ लोग छाप देते हैं। इन खतरनाक इलाकों में पत्रकारों के सामने सबसे बड़ी चुनौती सही सूचनाओं को हासिल करने में भी आती है। कुछ इलाकों में पत्रकारों को सेनाधिकारियों की ब्रीफिंग पर ही निर्भर रहना पड़ता है, पर हर मौके पर सेनाधिकारी पुष्टि के लिए उपलब्ध नहीं होते। भाषाई पत्रकारों की तुलना में अंग्रेजी पत्रकारों के साथ सैन्य अधिकारियों का रवैया थोड़ा उदार रहता है। यही नहीं बहुत अधिक नाराज हो जाने पर कुछ पत्रकारों को पुलिस आंतकवादियों का मुखबिर, पाकिस्तान का एजेंट या नक्सलवादियों का आदमी घोषित कर देती है। यह सही है कि सभी पत्रकार दूध के धुले नहीं होते पर सबको एक ही तराजू पर तौला नहीं जा सकता है।

हिंसाग्रस्त इलाकों में सेना और पुलिस के जवान भी काफी तनाव के बीच में काम करते हैं, पर पत्रकारों के तनाव और डेडलाइन का आतंक भी कम नहीं होता। पत्रकारों को हमेशा जान का जोखिम भी रहता है, जबकि सेना तथा पुलिस के पास कम से कम हथियार और बुलेटप्रूफ जैकेट तो होते हैं। लेकिन पत्रकारों के प्रति उनका रवैया उदार नहीं रहता है। दुर्भाग्य से पुलिस के अधिकारियों और जवानों के बीच में देश भर में यह धारणा सी बन गयी है कि मीडिया उनकी राह का रोड़ा है और वह निरर्थक आलोचना करता रहता है। कई शीर्ष अधिकारी इस खाई को और बढ़ा देते हैं। इसी नाते सामान्य जानकारियां भी शासकीय गोपनीयता या राष्ट्रीय

सुरक्षा का बहाना लेकर पत्रकारों को नहीं दी जाती हैं, जबकि वही सूचनाएं इंटरनेट पर सुलभ होती हैं। कुछ जगहों पर तो पुलिस मानवाधिकार उल्लंघन के मामले करती है और अगर पत्रकार उनको उचित तथ्यों के साथ उजागर करते हैं तो उग्रवादी गुटों का समर्थक बता कर परेशान किया जाता है। हाल में बस्तर संभाग के जगदलपुर, कांकेर, दंतेवाड़ा, बीजापुर और नारायणपुर जिले के पत्रकारों ने केंद्रीय गृह मंत्री पी. चिदंबरम को एक ज्ञापन भेज कर कहा है कि बस्तर संभाग में पुलिस उन पर नक्सली खबरों के प्रकाशन और प्रसारण के लिए अनावश्यक दबाव बनाने की कोशिश कर रही है। पुलिस गोपनीयता का हवाला देते हुए कोई सच्चाई नहीं बताती है और पुलिस अधीक्षक के स्तर पर मीडिया पर दबाव बनाया जा रहा है। इसी तरह कुछ जगहों पर सशस्त्र बल विशेषाधिकार कानून का आतंक दिखा कर मीडिया का भयादोहन भी किया जाता है।

जम्मू–कश्मीर में पत्रकारों को लंबे समय से अत्यधिक प्रतिकूल माहौल में काम करना पड़ रहा है। वहां पर सच लिखने वाले पत्रकारों को आए दिन आतंकवादी गुटों से धमकियां मिलती रहती हैं। कई पत्रकारों को तो गोलियों से उड़ा दिया गया। आतंकवादियों ने कई बार वहां संपादकों पर इस बात के लिए दबाव डाला कि वे उनके मनमाफिक लिखें और अमुक के बारे में न लिखें। कश्मीर घाटी में आतंकवादी हमले तेज होने के बाद सबसे पहले जनवरी 1990 में श्रीनगर से सभी विदेशी संवाददाताओं को निकालने का आदेश दे दिया गया था और देशी मीडिया पर भी खूब शिकंजा कसा और अधिकारों की आड़ में सेना तथा अर्धसैन्य बलों को मनमानी की छूट दे दी गयी। इसी पृष्ठभूमि में भारतीय प्रेस परिषद की कश्मीर समिति का गठन भी किया गया था। कश्मीर समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि विदेशी संवाददाताओं को श्रीनगर से निकाल देना एक भूल थी। जम्मू–कश्मीर की घटनाओं को कवर करने के लिए अंतरराष्ट्रीय समाचार माध्यमों को भी सभी सुविधाएं प्रदान करनी चाहिएं। अंतरराष्ट्रीय जनमत को जीतने के लिए खुली नीति को अपनाना ही लाभप्रद होगा, भले ही कुछ पत्रकारों के समाचारों के प्रेरित होने की आशंका क्यों न हो। समिति की कुछ बेहद अहम सिंफारिशें देश के किसी भी सशस्त्र टकराववाले इलाकों के लिए आज भी खास अहमियत रखती हैं। कश्मीर समिति ने अपनी सिफारिशों में कहा कि

- सुरक्षा बलों को चाहिए कि वे पत्रकारों के नाम जारी पहचान पत्रों या कर्फ्यू पासों को हमेशा स्वीकार करें। अगर किसी पत्रकार को तलाशी या पूछताछ के लिए रोका जाये तो उनका निरादर या उनके साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए और उनके दफ्तरों को तत्काल सूचित किया जाना चाहिए।
- स्थानीय पत्रकारों के बारे में कोई ठोस धारणा बनाने से पहले इस तथ्य को ध्यान में रखा जाये कि उनको उग्रवादियों के दबाव में भी काम करना पड़ता है। उनकी कठिनाइयों को भी समझा जाना चाहिए।
- संचार माध्यमों को सूचित करने की मौजूदा व्यवस्था बहुत धीमी और असंतोषजनक है। ऐसे में कश्मीर के लिए एक उच्चस्तरीय मीडिया प्रवक्ता बनाया जाना चाहिए जिसकी पहुंच श्रीनगर, जम्मू तथा दिल्ली में सूचना के सभी स्रोतों और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं तक हो।
- ऐसे अधिकारी और उसके सहायकों तक पहुंचना आसान होना चाहिए और सूचना देने के साथ पत्रकारों को घटनास्थल तक पहुंचाने के लिए एक हेलीकाप्टर तथा कुछ जीपें उपलब्ध करानी चाहिए। साथ ही उच्च स्तरीय मीडिया प्रवक्ता का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि पत्रकार राज्यपाल या शीर्ष लोगों से नही मिल सकेंगे। इसी तरह मीडिया संबंधी व्यापक नीति बनायी जानी चाहिए और पत्रकारों का अंतर प्रादेशिक आदान–प्रदान भी किया जाना चाहिए।
- आपत्तिजनक लेखन की अवधारणा को साफ तौर पर परिभाषित करने के साथ उनको ठीक से समझा जाना चाहिए। ऐसे लेखन को रोकना है तो सेंसर उसका कोई विकल्प नहीं है। ऐसे मामलों में कार्रवाई देश के सामान्य कानून के तहत की जानी चाहिए।
- पत्रकारों तथा समाचार पत्रों को सभी पक्षों तथा घटनाओं की समुचित व तथ्यपरक रिपोर्ट देनी चाहिए जिसमें स्रोतों की भी जानकारी दी जाये। व्यावसायिक कठोरता व हिम्मत के साथ तथ्यों

की जांच कर यथासंभव आंखों देखा हाल बयान करना चाहिए। लेकिन दर्दनाक घटनाओं का विवरण संयम व सादगी के साथ किया जाये और अफवाह व गलत तथ्यों से बचा जाये। गलत तथ्यों पर खंडन तथा स्पष्टीकरण भी प्रकाशित करना चाहिए।

- समाचारपत्रों में सांप्रदायिक व प्रादेशिक आधार पर ध्रुवीकरण जैसे दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में विवेकपूर्ण प्रयास करना चाहिए। अविश्वासपूर्ण माहौल में स्वतंत्र व निष्पक्ष प्रेस फल – फूल नहीं सकता ।

भारत में कई कठिन इलाकों में पत्रकारों की दिक्कतों की चर्चा तो होती है, पर इनके निदान की दिशा में ठोस कदम नहीं उठते दिखायी पड़ते हैं। अगर भारतीय प्रेस परिषद की कश्मीर समिति की सिफारिशों को सरकार तथा मीडिया प्रतिष्ठानों ने स्वीकार लिया होता तो शायद आज तस्वीर में फर्क नजर आता। हालांकि कश्मीर समिति ने भी माना था कि जोखिम इस पेशे का अभिन्न अंग है लिहाजा पत्रकारों को जोखिम उठाने के लिए तैयार रहना चाहिए। हम कितना भी चाहें संपूर्ण सुरक्षा की व्यवस्था नहीं हो सकती है। साथ ही समिति ने यह भी कहा था कि पत्रकारों का चयन सावधानी से किया जाना चाहिए और उनकी सुविधाओं, यात्रा भत्ता, विशेष भत्ता, अन्य लाभ तथा बीमा कवर भी देना चाहिए। रात–बेरात काम करनेवाले पत्रकारों को परिवहन तथा सुरक्षित स्थान उपलब्ध कराना तथा घटनास्थल पर जाने के लिए सरकारी समर्थन जैसी बातें भी कही गयी थीं। पर इन पर अमल नहीं हुआ।

पूर्वोत्तर और अतीत के आतंकवाद प्रभावित पंजाब में भी लंबे समय तक मीडिया को काफी कठिन हालात में काम करना पड़ा है। पंजाब में तो आतंकवाद के शांत होने के बाद पत्रकारों की स्थिति पहले जैसी हो गयी लेकिन पूर्वोत्तर में आज भी हालात खराब है। असम में वर्ष 2006 में उल्फा ने जिस तरह से पत्रकारों को धमकी दी और वरिष्ठ संपादकों को निशाना बनाया उसकी देशव्यापी निंदा हुई थी। पूर्वोत्तर राज्यों में मीडिया पर बढ़ते हमले और धमकियों को स्वतः संज्ञान में लेते हुए भारतीय प्रेस परिषद ने एक मूल्यांकन समिति भी गठित की थी जिसने अक्तूबर 2007 में अपनी रिपोर्ट दी। यही नहीं केंद्रीय गृह मंत्रालय तथा सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने भी पूर्वोत्तर के पत्रकारों को यथासंभव सुरक्षा देने के लिए असम सरकार

को वर्ष 2007 में पत्र भी लिखा। मणिपुर में आतंकवादियों की धमकियों के विरोध में एक दिन अखबार भी नहीं छपे। उग्रवादियों ने वहां एक अखबार के संपादक को डाक के जरिए एक छोटा ग्रेनेड भेजा था पर संयोग से वह फटा नहीं था। मणिपुर में पत्रकार लंबे समय से भारी असुरक्षा में जी रहे हैं। वहां पर पुलिस आसानी से पत्रकारों को उग्रवादियों का एजेंट घोषित कर उनका उत्पीड़न करती है। हाल में पत्रकारों की एक बैठक में दो पत्रकारों को ऐसे ही मामले में हिरासत में लेने की घटना पर नाराज पत्रकारों ने सरकारी खबरों के बायकॉट का फैसला किया हैं। असम में तो 1990 के बाद 16 से अधिक पत्रकार जान से हाथ धो बैठे हैं और कई गंभीर रूप से घायल हुए।

यह सुपरिचित तथ्य है कि हिंसाग्रस्त इलाकों में गोपनीयता कानून की आड़ में बहुत सी ऐसी बातों को छिपाया भी जाता है जिनके सार्वजनिक करने में कोई समस्या नहीं होती। बहुत सी जगहों पर तो पत्रकारों को जाने की अनुमति ही नहीं दी जाती है। ऐसे इलाकों में अधिकारी मनोवैज्ञानिक दबाब पैदा करने के साथ ऐसा बोध कराते हैं गोया वहां उनका ही कानून है और वे मीडिया की स्वतंत्रता या मानव अधिकारों से कहीं ऊपर हैं। यह जरूर है कि खास तौर पर राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन के बाद काफी जागरूकता आयी है और सेना तथा अर्धसैन्य बल मानव अधिकार उल्लंघन के मामलों को गंभीरता से लेने लगे हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन के वर्ष ही 1993 में भारतीय सेना मुख्यालय में मानवाधिकार प्रकोष्ठ का गठन किया गया था और सैनिकों के लिए खास तौर पर मानवाधिकारों के लिए क्या करें क्या न करें सूची तथा दिशानिर्देश अपने पास रखना अनिवार्य कर दिया गया। फिर भी मानव अधिकार उल्लघंन के मामले तो प्रकाश में आते ही रहते हैं और मीडिया जब मामलों को उठाता है तो सुरक्षा बलों के कई अधिकारी उसे परेशान करते हैं।

देश के तमाम हिस्सों में पुलिस के साथ प्रेस का बहुत तनावपूर्ण संबंध बन गया है। पुलिस की अकर्मण्यता, शिथिलता, निष्क्रियता, बलात्कार, नरसंहार, कानून व्यवस्था की खराब हालत आदि पर जब पत्रकार लिखते हैं तो पुलिस के बड़े आकाओं की आंख की किरकिरी बनते हैं। आज मीडिया की पहुंच दुर्गम इलाकों तक हो गयी है और संवाददाताओं का जाल बिछा हुआ है।

भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण का एक अहम दायित्व पुलिस पर भी है। यही देश में कानून व्यवस्था को बनाए रखने की महत्वपूर्ण मशीनरी है। पुलिस के पास गिरफ़्तार करने, तलाशी लेने, सामान जब्त करने, अदालत में फौजदारी मामला दायर करने जैसे अधिकार होते है। पर विडंबना है कि जिस संस्था पर मानवाधिकारों की रक्षा का भार है उसी पर सबसे ज्यादा मानवाधिकार हनन के आरोप लगाए जाते हैं। खास तौर पर पुलिस अभिरक्षा में मानवाधिकारों का गला घोंटने की घटनाएं बंद नहीं हुई हैं और इस पर भी पुलिस अधिकारी अजीबो गरीब दलील देते हैं।

आयोग तथा आम कार्यकर्ताओं के लिए चिंता का विषय बना हुआ है। तमाम प्रयासों के बाद भी पुलिस की मनमानी पर रोक नहीं लग सकी है। भारत में सबसे ज्यादा मानवाधिकार हनन पुलिस हिरासत में ही होता है। पुलिस अभिरक्षा में कैदियों की मृत्यु, महिला कैदियों तथा बच्चों के यौन उत्पीड़न की घटनाएं भी समय–समय पर प्रकाश में आती हैं। उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में थानों में प्राथमिकी दर्ज कराना मुश्किल है क्योंकि थाना प्रभारी अपने इलाकों में अपराध की दर कम रखना चाहते हैं। इसके चलते मीडिया और पुलिस के बीच जगह–जगह तनाव के मोर्चे खुल गए हैं। इसी प्रकार जेलें या जेल जैसे संगठन मीडिया से हमेशा दूर रहते हैं। उनमें पारदर्शिता के अभाव की तमाम खबरें अखबारों में छपती हैं। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के गठन के पूर्व तो अधिकतर जेलों की क्या दशा है, इसकी भी जानकारी कभी कभार मिल पाती थी। जेलों की दयनीय दशा को बदलने में भी आयोग की खास भूमिका है । फिर भी मीडिया और जेल तंत्र के साथ संवाद का अभाव अभी भी बना हुआ है और इसे दूर किया जाना चाहिए। मीडिया को भी इस बात की इजाजत मिलनी चाहिए कि वह समय–समय पर समूहों के साथ जेलों का दौरा करके वास्तविक दशा का वर्णन करे। इसी तरह बाल संरक्षण गृह, महिला संरक्षण गृह और ऐसी अन्य संस्थाओं की कार्यप्रणाली भी पारदर्शी होनी चाहिए लेकिन इन संस्थाओं की कार्यप्रणाली को बेहतर बनाने के साथ खास तौर पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया से जुड़े युवा पत्रकारों के प्रशिक्षण के मामले में मीडिया की ओर से गंभीर पहल अपेक्षित है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के व्यापक विस्तार के चलते काफी संख्या में बिल्कुल युवा पत्रकारों को कठिन इलाकों में तैनात कर दिया जाता है। लेकिन उनको न तो ठीक से मार्गदर्शन दिया जाता है न ही प्रशिक्षण। इस नाते इन इलाकों में लंबे समय से काम कर रहे पत्रकारों तथा विशेषज्ञों की मदद से एक ठोस प्रशिक्षण तंत्र भी युवा पत्रकारों के लिए स्थापित करना चाहिए ताकि वे परेशानियों से बच सकें। इसी तरह राज्य सरकारों, केंद्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, गृह मंत्रालय तथा रक्षा मंत्रालय को भी पत्रकारों के प्रशिक्षण और मार्गदर्शन से जुड़े पहलुओं पर बारीकी से गौर करना चाहिए। इसी तरह मानव अधिकारों के हनन के लिहाज से संवेदनशील राज्यों के चुनिंदा जिलों में कस्बाई और जिला मुख्यालय के पत्रकारों की कार्यशाला आयोजित की जानी चाहिए। इन प्रयासों से निश्चय ही तस्वीर बदल सकती है।

संदर्भ सामग्री

1 केंद्रीय गृह मंत्रालय, भारत सरकार, वार्षिक रिपोर्ट, वर्ष 1996– 97 से 2007–2008 तक।

2 राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग की वार्षिक रिपोर्ट 1998–99 से 2006–2007।

3 भारतीय प्रेस परिषद की वार्षिक रिपोर्ट : सन् 1999–00 से 2005–06।

4 प्रेस परिषद समीक्षा के अंक 2001 से सितंबर 2008 तक।

5 क्राइसिस एंडे क्रेडिबिल्टी : भारतीय प्रेस परिषद् की कश्मीर समिति की सिफारिशें –भारतीय प्रेस परिषद्,14 दिसबंर 1990।

6 मीडिया विमर्शः राम शरण जोशी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।

7 टेलीविजन और अपराध पत्रकारिताःवर्तिका नंदा,भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली।

8 रिपोर्टिंग आर्ज्ड कांप्लिक्टः प्रेस इंस्टीट्यूट आफ इंडिया एवं इंटरनेशनल रेड क्रास, नई दिल्ली।

9 पुलिस और मानवाधिकार : प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली।

10 मानव अधिकार संरक्षण अध्यादेश, 1993 पर पीपुल्स राइट्स आर्गेनाइजेशन के तत्वावधान में दिल्ली में आयोजित एक दिवसीय राष्ट्रीय अधिवेशन की स्मारिका–1993

11 भारतीय प्रेस : यहां अभी भी लागू है इमरजेंसीः अरविंद कुमार सिंह, अमर उजाला 25 जून 1995।

12 ए लक्ष्मणरेखा फार जर्नलिस्ट्स : अरिंदम बनर्जी, इंकवर्ल्ड–2004।

13 सीमांत समाज और मीडिया : हरिवंश, विदुरा जनवरी मार्च 2003।

14 मानवाधिकार संबंधी खबरें और मीडियाः अलका आर्य, हिंदुस्तान 10 अगस्त 1998।

15 जम्मू –कश्मीर मे मानवाधिकारों का पालन–आलेख, पीआईबी–गृह मंत्रालय, 10 जनवरी 2006

***

शिक्षा : एक मानव अधिकार

डॉ. आलोक चांटिया*

मानवाधिकार, शब्द द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद एक संकल्पना के रूप में आया, पर मानव के अधिकारों को किसी भी संस्कृति के अन्तर्गत राजनैतिक संस्थाओं (जैसे पंचायत) ने सदैव सुरक्षित किया और विवाद की स्थिति में एक निर्णायक भूमिका का निर्वहन किया। राष्ट्र–राज्य संकल्पना में मानवाधिकार एक सार्वभौमिक उद्घोषणा के रूप में स्थापित किया गया जो पृथ्वी पर रहने वाले प्रत्येक मानव पर समान रूप से लागू हो सके। अपने आरम्भिक चरण में मानवाधिकार सिर्फ नागरिक एवं राजनैतिक (सिविल एण्ड पॉलिटिकल राइट) अधिकारों तक ही सीमित रहा जिसे प्रथम श्रेणी का मानवाधिकार कहा गया। परन्तु बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इस तथ्य की आवश्यकता महसूस की जाने लगी कि सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक अधिकारों को भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए और इन अधिकारों को द्वितीय पीढ़ी का मानवाधिकार कहा गया। यदि सामान्य रूप से समझा जाये तो मानवाधिकार स्वतः ही प्राप्त नहीं हो जाता है बल्कि उसके लिए प्रयास किया जाता है। पृथ्वी की सीमा निश्चित है। प्राकृतिक संसाधन भी निश्चित है और ये दोनों तथ्य सिर्फ मानव के लिए ही उपलब्ध नहीं है। बल्कि पृथ्वी के प्रत्येक प्राणी का प्राकृतिक संसाधनों पर समान अधिकार है। मानव ने संस्कृति निर्माण करके अपने अस्तित्व को अपेक्षाकृत इतना सुरक्षित कर लिया कि प्रकृति में असहाय स्थिति में रहने वाला मानव अपनी जनसंख्या को ही नियन्त्रित नहीं कर पाया और यही कारण है कि प्राकृतिक संसाधनों एवं मानव जनसंख्या के मध्य एक गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया। पृथ्वी के समस्त मानव के समक्ष समान रूप से भोजन, कपड़ा, आवास का विकल्प नहीं रहा और इस स्थिति से उबरने के लिए मानव को मुद्रा आधारित समाज एवं शिक्षा, विशेषज्ञता को पराश्रय देना पड़ा। शिक्षा का तात्पर्य स्वतः ही श्रेणीबद्ध हो गया। प्रथम श्रेणी में वह शिक्षा आ गयी, जिस संस्कृति, समाज में मानव जन्म लेता है, और अपने व्यवहार को नियन्त्रित तथा

---

*प्रवक्ता, मानवशास्त्र विभाग, श्री जय नारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ

सुनिशिचत करता है। यह शिक्षा व्यक्ति के लिए तब तक पूर्ण रही जब तक वह अपना सम्पूर्ण जीवन अपने सांस्कृतिक समुदाय में ही व्यतीत करता था, परन्तु संस्कृति भी एक भौगोलिक सीमा सूचक शब्द है जिसकी एक निश्चित वहन क्षमता और सीमा है। इसीलिए एक संस्कृति के वाहक सदस्यों की जनसंख्या बढ़ने पर समुदाय के भीतर पायी गयी शिक्षा उतनी कारगर नहीं रही और व्यक्ति को राष्ट्र–राज्य संकल्पना में संस्कृति से इतर राष्ट्र एवं राज्य के अनुकूल भी शिक्षा ग्रहण करने का प्रयास करना पड़ा। यह द्वितीय श्रेणी की शिक्षा थी जो प्रथम श्रेणी की शिक्षा से ज्यादा महत्वपूर्ण हो गयी। परन्तु द्वितीय श्रेणी की शिक्षा में जटिलता और लम्बी प्रक्रिया होने के कारण यह शिक्षा प्रायः लोगों में उपेक्षित बनी रही। दूसरी बड़ी समस्या मानव के सामने मुद्रा परक समाज में शिक्षा ग्रहण करने में असमर्थता थी। जितने धन में उसे शिक्षा ग्रहण करनी थी, उतने में वह जीवन चलाने का प्रयास कर रहा था। इस स्थिति ने भी द्वितीय श्रेणी की शिक्षा को एक निश्चित प्रतिशत के लोगों में ही प्रचलित होने दिया जिसके कारण समाज में एक गम्भीर असमानता व्याप्त हो गयी। मानव–मानव के बीच भेद गहरा गया। यह भेद आर्थिक ज्यादा थे पर उसका परिणाम सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन पर भी बहुत पड़ा जिसके कारण अमीर–गरीब–बहुत गरीब जैसी श्रेणियां बन गयीं। मानवाधिकार के दृष्टिकोण से यह एक गम्भीर समस्या थी इसीलिए यह अनुभव किया गया कि शिक्षा को भी मानवाधिकार के दायरे में लाया जाये और तीसरी पीढ़ी के मानवाधिकार में शिक्षा का अधिकार सबसे प्रमुख घटक बन गया। शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो मानव को अन्य जीव–जन्तुओं से अलग करती है। पृथ्वी पर जितने भी जीव जन्तु हैं, सभी अपनी पीढ़ी को सिखाते है, पर मानव से इतर जितने भी प्राणी हैं वह जैविक शिक्षा देते हैं, जो हर प्राणी में स्वतः आ जाती है, जैसे पक्षियों का उड़ना, जानवरों के बच्चों का शिकार करना आदि। विकास के साथ–साथ जैविक क्षमता स्वतः ही विकसित हो जाती है। जानवर अपने बच्चों को सीखने के बीच संरक्षण देते हैं, भोजन, आवास की व्यवस्था करते हैं। फिर बच्चे बड़े होकर अपनी अगली पीढ़ी के लिए करते हैं। इस जैविक शिक्षा से इतर मानव ने अपने बच्चों को जो शिक्षा दी, वह प्रकृति के बेहतर उपयोग की थी, जो मानव एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संस्कृति के माध्यम से देता है। इस संस्कृति परक शिक्षा के कारण ही मानव की शारीरिक जटिलता से इतर सीखने एवं सम्पर्क में रहने

की प्रक्रिया के कारण मानव जीवन में सांस्कृतिक जटिलता भी आती गयी जिसके कारण मानव से शिक्षा को ग्रहण करके समाज के अनुरूप बनने की अपेक्षा की जाने लगी। शिक्षा, जो सिखायी जाती है, और उसे सिखाने के लिए जो प्रविधि प्रयोग की जाती है, उसे शिक्षा व्यवस्था कहा गया परन्तु प्रविधि के आने के कारण इसमें आर्थिकी का समायोजन स्वतः ही होता चला गया जिसने शिक्षा के वितरण को असमान कर दिया और सांस्कृतिक – समुदाय की पारम्परिक या प्रथम श्रेणी की शिक्षा से इतर राष्ट्र–राज्य संकल्पना में निहित शिक्षा में समाज, शिक्षित एवं अशिक्षित लोगों में बंट गया।

मानवाधिकार की श्रेणीबद्धता में शिक्षा को तीसरी पीढ़ी के मानवाधिकार के रूप में परिभाशित करने के बाद सभी मानवों में शिक्षा के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना एक सरल कार्य नहीं था। लेखक द्वारा वर्ष 1997 से 2006 तक उत्तर प्रदश के बहराइच जिले में रहने वाले धान्यकूट समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन का मानव शास्त्रीय अध्ययन किया गया। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार इनकी जनसंख्या 2687 (दो हजार छह सौ सत्तासी) है। भारतीय जाति व्यवस्था में इस समूह का कोई वर्णन उपलब्ध नहीं है और ना ही जिला गजेटियर में इनके बारे में कोई साहित्य उपलब्ध है। शहर के मध्य रहने वाले धान्यकूट का निवास स्थान धनकुट्टीपुरा के नाम से प्रसिद्ध है। सिर्फ तीन लोग चतुर्थ श्रेणी सरकारी कर्मचारी हैं। और पिछले दस वर्षों में नौ (09) परिवारों ने 1.5 बीघा से 5 बीघा तक मीरपुर गांव में जमीन खरीद कर खेती आरम्भ की है। खुदरा वस्तुओं को बेचकर ये किसी तरह अपना जीवन यापन करते हैं। ये पशुपालक नहीं हैं परन्तु धान्यकूट महिलायें दिन भर शहर की सड़कों पर पड़े गोबर को एकत्र करती हैं और फिर उससे कण्डा बनाकर ईंधन के रूप में प्रयोग करती हैं और जीवनयापन के लिए बेचती भी हैं। धान्यकूट बच्चे उबले चने बेचते शहर की गलियों में देखे जा सकते हैं, जिससे वह घर चलाने में सहयोग करते हैं। इन स्थितियों में शहर में रहने के बाद भी वे शिक्षा को अपने जीवन में गरीबी के कारण महत्वपूर्ण स्थान नहीं दे पाये है, जबकि अपने चारों तरफ रहने वाली अन्य जातियों यथा कायस्थ, ब्राह्मण, मारवाड़ी की प्रगति देखकर वे ये मानते हैं कि शिक्षा के द्वारा प्रगति की जा सकती है। गरीबी और बिना सरकारी सहयोग के वे शिक्षा ग्रहण करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। धान्यकूट बच्चे अपने निवास स्थान के समीप ही राजकीय इन्टर कालेज बहराइच में शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं, और इसके लिए वे छात्रवृत्ति चाहते हैं। सरकार द्वारा उन्हें आज तक अनुसूचित

जाति/जनजाति/पिछड़ा वर्ग की घोषित नहीं किया गया है। यही कारण है कि जीवन की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में लगे धान्यकूट के पास शिक्षा के लिए समय ही नहीं है। भारत जैसे विशाल देश में शिक्षा को लेकर धान्यकूट की तरह स्थिति कई सामाजिक समूहों की है। यही कारण है कि शिक्षा को मानवाधिकार का एक अभिन्न हिस्सा बना दिया गया है।

शिक्षा को मानवाधिकार के परिप्रेक्ष्य में देखना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि भारतीय विद्यालयीन शिक्षा प्रणाली की गुणवत्ता पर ए.एस.ई.आर. के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि चार वर्ष की स्कूली पढ़ाई पूरी करने वाले 38 प्रतिशत बच्चे, छोटे–छोटे वाक्यों को नहीं पढ़ सकते, जबकि 55 प्रतिशत बच्चे तीन अंकों की संख्या को एक अंक की संख्या से भाग नहीं दे सकते। इस तथ्य से स्पष्ट है कि शिक्षा का अधिकार अपना आकार नहीं ले पा रहा है। शिक्षा के प्रसार के बाद भी 57 प्रतिशत युवा रोजगार पाने की योग्यता नहीं रखते हैं। शिक्षा के अधिकार को एक स्थायित्व की तरफ अग्रसर करते हुए यशपाल कमेटी रिपोर्ट में भारत के 75 वें स्वतन्त्रता वर्श यानि 2022 तक सत्तर करोड़ युवाओं की ऐसी अग्रिम पंक्ति तैयार करने की सिफारिश की गयी है जो विश्व में कहीं भी नौकरी पा सकें। यह स्थिति तभी अपने स्वरूप को प्राप्त कर सकती है जब देश के बच्चों को शिक्षा का अधिकार समुचित रूप से मिले और उस अधिकार का बच्चे ठीक से लाभ ले सकें।

मानवाधिकार के लिए 4 अगस्त 2009 एक स्वर्णिम अवसर था जब भारत के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम पारित हो गया। अधिनियम के बनते ही भारतीय संविधान में प्रदत्त मौलिक अधिकारों के अनुरूप दश के प्रत्येक बच्चे को शिक्षा पाने का मौलिक अधिकार प्राप्त हो गया। इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गयी है कि छह से चौदह वर्ष तक के बच्चे को अपने पड़ोस के विद्यालय में आठवीं तक बुनियादी शिक्षा निःशुल्क एवं अनिवार्य रूप से पाने का अधिकार है। यदि किन्हीं कारणों से बच्चा शिक्षा नही ले पाता है तो छह वर्ष की उम्र के बाद अपनी उम्र के अनुरूप कक्षा में प्रवेश ले सकता है और इस स्थिति में भी उसे निःशुल्क शिक्षा ही प्राप्त होगी। संस्थान इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि वे बच्चे को प्रवेश नही देंगें। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि बच्चा अगर 14 वर्ष तक अपनी बुनियादी शिक्षा पूरी नहीं कर पाता है तो संस्था उसे तब तक शिक्षा उपलब्ध करायेगा जब

तक उसकी बुनियादी शिक्षा पूरी नहीं हो जाती है। और ऐसी स्थिति में ना तो उसे विद्यालय से निकाला जायेगा और ना ही किसी तरह का शुल्क लिया जायेगा।

शिक्षा देने के कार्य को सिर्फ सरकार और सरकारी स्कूलों के माध्यम से ही पूरा नहीं किया जा सकता। इसीलिए अनेकों निजी संस्थान भी बच्चों को बुनियादी शिक्षा देने के कार्य में संलग्न हैं। परन्तु उनमें फीस की अधिकता ने ज्यादातर सामान्य और गरीब भारतीय बच्चों को शिक्षा पाने से वंचित कर रखा है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर शिक्षा के अधिकार में यह व्यवस्था की गयी हैं कि सभी निजी शैक्षिक संस्थान अपने यहाँ प्रथम शिक्षा के लिए प्रवश पाने वाले बच्चों के कुल प्रवेश में 25 प्रतिशत प्रवेश असमर्थ एवं वंचित बच्चों को देंगें। उन्हें शिक्षा पूर्णतः निःशुल्क दी जायेगी। यदि उनके द्वारा 25 प्रतिशत बच्चों को निःशुल्क शिक्षा ना देकर उनसे फीस वसूली जाती है तो इसे अपराध समझा जायेगा और ऐसा अपराध पारित करने पर प्रथम बार पच्चीस हजार रूपये जुर्माना और फिर दुबारा ऐसा करने पर पचास हजार रूपये जुर्माना किया जायेगा। सामान्यतया ऐसी स्थिति से बचने के लिए निजी संस्थान फीस ना लेकर चन्दा या दान लेने की प्रक्रिया आरम्भ कर देते हैं। इस तरह के किसी भी चन्दा या दान को सरकार ने पूरी तरह प्रतिबन्धित कर दिया है। विद्यालय खोलने के जो भी मानक सरकार द्वारा निर्धारित किये गये हैं, उनको पूरा किये बिना कोई भी स्कूल नहीं खोला जा सकेगा तथा विद्यालय मान्यता का प्रमाण पत्र प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया। माता–पिता या अभिभावक से भी यह अपेक्षा की गयी है कि वह छह वर्ष से चौदह वर्ष तक के बच्चों को विद्यालय में पढ़ने के लिए प्रवेश अवश्य दिलायें।

शिक्षा के अधिकार को पूर्णरूपेण लागू करने के लिए एक राष्ट्रीय सलाहकार परिषद का प्रस्ताव है। यह प्रस्तावित राष्ट्रीय सलाहकार परिसद का गठन केन्द्र सरकार करेगी और इसमें बुनियादी शिक्षा और बाल विकास के क्षेत्र में व्यवहारिक एवं पर्याप्त अनुभव रखने वाले लोगों को सम्मिलित किया जायेगा। यह परिषद इस बिन्दु पर अपना ध्यान केन्द्रित करेगी कि शिक्षा अधिनियम के प्रावधानों को प्रभावी ढंग से लागू करने के बारे में केन्द्र सरकार को समय–समय पर सलाह दी जाये। शिक्षा की महत्ता को काफी लम्बे समय से महसूस किया जाता रहा है। यही कारण है कि शिक्षा को कई योजनाओं का नाम देकर संचालित किया जाता रहा है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण हैं–

सर्व शिक्षा अभियान— इसे राज्य सरकारों की भागीदारी से 6–14 वर्ष के आयु के बच्चों की आवश्यकताओं पर ध्यान देने हेतु कार्यान्वित किया गया है। इसके अन्तर्गत दिसम्बर 2008 तक आठ करोड़ चालीस लाख बच्चों को निःशुल्क पाठ्य पुस्तकों की आपूर्ति तथा नौ लाख छाछठ हजार अध्यापकों की नियुक्ति सम्मिलित है। इस अभियान के कारण विद्यालय छोड़ने वाले बच्चों की संख्या में पर्याप्त कमी आयी है।

बालिकाओं की शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम— यह एक प्रचलित कहावत है कि एक पढ़ी लिखी मां से पूरा परिवार प्रभावित होता है या पढ़ा लिखा हो जाता है। इसीलिए सरकार द्वारा बालिकाओं के लिए प्रारम्भिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम आरम्भ किया गया। शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े ब्लाकों में जहां ग्रामीण महिला साक्षरता का स्तर राष्ट्रीय औसत की अपेक्षा कम है और पुरुष–महिला अनुपात अन्तर राष्ट्रीय औसत की अपेक्षा अधिक है। इसके अतिरिक्त यह उन ब्लाकों में भी लागू किया गया है जहां न्यूनतम पांच प्रतिशत आबादी अनुसूचित जाति/जनजाति की है तथा इन महिलाओं की साक्षरता दर दस प्रतिशत से भी कम है। इन्हें मलिन बस्तियों में भी लागू किया गया है। 25 राज्यों में स्कीम के अन्तर्गत शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े लगभग 3,286 ब्लाकों को सम्मिलित किया गया है। शिक्षा का अधिकार तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जब शरीर को भोजन का अधिकार भी प्राप्त हो और शरीर, शिक्षा प्राप्त करने के योग्य हो। इसी अधिकार को सुनिश्चित करने हेतु सरकार द्वारा मध्याह्न भोजन कार्यक्रम आरम्भ किया गया है। इस कार्यक्रम में प्राथमिक अवस्था में बालकों को 450 कैलोरी और 12ग्राम प्रोटीन को मध्याह्न भोजन के रूप में उपलब्ध कराया जाता है। प्रारम्भिक अवस्था से ऊपर के बालकों के लिए 700 कैलोरी और 20 ग्राम प्रोटीन का पोषाहार मूल्य निर्धारित किया गया है। वर्ष 2008–09 में कक्षा एक से पांच तक के प्राथमिक स्तर के आठ करोड़ चौबीस लाख बच्चे और कक्षा छह से आठ तक तीन करोड़ पचास लाख प्राथमिक स्तर से ऊपर के बच्चों को इसका लाभ दिया गया।

कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय (के.जी.बी.वी)[12] योजना भी बालिका के शिक्षा के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए चलायी गयी योजना है। इसमें अनुसूचित जाति/अनुसूचित जन जाति, अन्य पिछड़ा वर्ग एवं अल्पसंख्यक समुदायों से सम्बन्धित बालिकाओं के लिए ऊपरी प्राथमिक स्तर पर आवासीय विद्यालयों की स्थापना के लिए जुलाई 2004 में योजना शुरू हुई। अप्रैल 2007

में इस योजना का सर्व शिक्षा अभियान के साथ विलय हो गया। सरकार द्वारा 31 मार्च 2009 तक 2573 के.जी.बी.वी. की स्वीकृति दी गयी जिसमें वर्तमान में 2460 (95.61 प्रतिशत) कार्य कर रहे हैं और इसमें 2,15,269 बालिकायें पंजीकृत हुई हैं। बालिकाओं को शिक्षा के अधिकार के दायरे में लाने का यह एक सराहनीय प्रयास है।

शिक्षा को एक अधिकार के रूप में पाने के लिए जरूरी है कि प्रत्येक देशवासी पहले उस अधिकार का हिस्सा बने ताकि बेहतर तरीके से उसके गुण–अवगुण का आंकलन व विश्लेषण किया जा सके जिससे शिक्षा स्वयं जीवन के अधिकार का एक बेहतर विकल्प बन जाये।

संदर्भ

1. शारीरिक मानव शास्त्र – रिपुदमन सिंह, हिन्दी संस्थान उत्तर प्रदेश
2. सार्वभौमिक मानवाधिकार उद्घोषणा, अनुच्छेद, 1948
3. राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की रिपोर्ट, नई दिल्ली
4. ए.एस.ई.आर. (Assessment Survey Evaluation Research Centre) नई दिल्ली
5. यशपाल कमेटी रिपोर्ट – 2008
6. शिक्षा अधिकार अधिनियम – 2009 भारत सरकार नई दिल्ली
7. समवर्ती सूची, भारतीय संविधान, नई दिल्ली
8. भारतीय संविधान – अनुच्छेद 21ए, नई दिल्ली
9. बाल अधिकार संरक्षण अधिनियम 2005
10. सर्व शिक्षा अभियान – भारत सरकार नई दिल्ली
11. बालिकाओं की शिक्षा का राष्ट्रीय कार्यक्रम
12. कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना भारत सरकार
13. ग्यारहवीं पंच वर्षीय योजना 2007–12 भारत सरकार

***

सहभागिता प्रणाली और मानवाधिकार

कन्हैया त्रिपाठी*

सहभागिता हमारी संस्कृति में है। सहभागिता का तात्पर्य यह नहीं होता कि हमारे विचार और व्यवहार दोनों में भेद हो। सहभागिता हमसे साझेदारी की अपेक्षा रखती है दोनों तरह से – व्यवहारिक दृष्टि से भी और वैचारिक दृष्टि से भी। अब साझेदारी को हम किस नैतिक धरातल पर खड़े होकर निर्वाह करते हैं यह हमारी नैतिकता पर निर्भर करता है। इसलिए सहभागिता का सामान्यीकरण नहीं होना चाहिए। दूसरी बात, उसमें अन्तर्निहित सम्भावनाओं का हमें एहसास हो तो उसे हम गम्भीरता से लेंगे। विश्व में सभी व्यवस्थाएँ एक तरह से देखा जाए तो सहभागिता–प्रणाली पर आगे बढ़ी हैं चाहे वह स्टेट जैसी व्यवस्था क्यों न हो। मनुष्य साझेदारी के जरिए इतनी लम्बी यात्रा करके आज 21वीं सदी में अपने अधुनातन विकास और विचारणा से आगे बढ़ रहा है, यदि ऐसा कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगी। मानवाधिकार भी हमसे सहभागिता प्रणाली की माँग करते हैं जीससे हम मनुष्यों को और सुदृढ़ करना है।

यह आम धारणा रही है कि मनुष्य को जन्म से ही सभी अधिकार प्राप्त हैं। वैसे भारत में *'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे: सन्तु निरामया:'* जैसी अभिव्यक्तियाँ पहले से मिलती हैं–मनुष्य का वैदिक काल हो या उत्तर वैदिक काल, मध्य काल हो या आधुनिक काल सब में भारतीय मानव समाज की यह संकल्पना पूरे जगत में अतीव प्रशंसनीय है। किन्तु, 10 दिसम्बर, 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा–पत्र की अनुशंसा जब हुई तो यह महसूस किया गया कि हमने अपने संस्कारों में जिस *'सर्वे भवन्तु सुखिनः'* की संकल्पना की है, वह एक तरह से सामाजिक हित की संकल्पना जरूर रही लेकिन वास्तव में हमें उन्हें आम जनमानस में प्रकीर्णित करना बाकी है व्यावहारिक धरातल पर। वस्तु स्थिति का यदि हम अवलोकन करें तो यही लगता है, कि उक्त संकल्पना या तो हमारी भावनाओं का निर्धारण मात्र रह गयी है, या हमने इसे अपने संस्कृति और सभ्यता का महत्वपूर्ण स्लोगन

*** अहिंसा एवं शांति अध्ययन (संस्कृति विद्यापीठ) महात्मा गांधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)**

बनाकर छोड़ दिया है। भारतीय मानवाधिकारवादी 1948 से पूर्व भी इस पर विचार कर रहे थे लेकिन 1948 के बाद इस बात की बहस काफी खुलकर होने लगी कि जिस मानवाधिकार की अवधारणा भारतीय परम्परा में रही है उसका आशय, उसका फलितार्थ क्या वास्तव में भारतीय नागरिकों के लिए कभी उपयोगी साबित हुआ? यदि 'हाँ'', तो क्या वह हमारे समाज में दिख रहा है? यदि 'नहीं', तो उसके कारण क्या हैं और हम कैसे पहुँच सकेंगे उसे आमजन की पहुँच बनाने के लक्ष्य तक?

ये ऐसे सवालात हैं जिस पर भारत को बार–बार मंथन करना है और किया भी जाना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र सार्वभौम घोषणा पत्र में 10 दिसम्बर, सन् 1948 को क्रमशः इन अधिकारों से आमजन को अभिसिंचित करने का लक्ष्य रखा गया था–इसके अनुच्छेद (1) और (2) के अनुसार 'सभी मनुष्य समान अधिकार और सम्मान लेकर जन्म लेते हैं' और उन्हें वैश्विक घोषणा में वर्णित सभी अधिकार और स्वतंत्रता 'जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीति या अन्य विचारधारा, राष्ट्रीय या सामाजिक मूल, सम्पत्ति, जन्म या अन्य स्थितियों के किसी भेदभाव के बिना' स्वतः मिल जाते हैं।

अनुच्छेद 3 से 21 में उन नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का वर्णन है, जिनका सभी मनुष्यों को अधिकार है। इन अधिकारों में शामिल है–

- जीवन स्वतंत्रता और सुरक्षा का अधिकार,
- दासता और पराधीनता से मुक्ति
- अत्याचारपूर्ण, क्रूर और अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार अथवा दण्ड से मुक्ति,
- कानून के समक्ष व्यक्ति के रूप में मान्यता का अधिकार, न्यायिक सुविधा पाने का अधिकार, मनचाहे ढंग की गिरफ्तारी या निष्कासन से बचाव का अधिकार, स्वतंत्र एवं निष्पक्ष ट्रिब्यूनल द्वारा स्वतंत्र एवं निष्पक्ष सुनवाई का अधिकार, दोष सिद्ध करने से पहले निर्दोष माने जाने का अधिकार,

- आने–जाने की स्वतंत्रता, शरण लेने की स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता अपनाने की स्वतंत्रता,
- विवाह करके परिवार बनाने का अधिकार और सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार,
- विचारों, आत्मचिंतन और कोई भी धर्म अपनाने की स्वतंत्रता, विचारधारा और अभिव्यक्ति का अधिकार,
- शांतिपूर्वक एकत्र होने का अधिकार,
- अनुच्छेद 22 से 27 में ऐसे आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की घोषणा की गयी जिनके मानव जाति के सभी लोग हकदार हैं, ये है–
- सामाजिक सुरक्षा का अधिकार,
- काम करने का अधिकार, समान काम के लिए समान वेतन और मजदूर यूनियन बनाने और उसमें शामिल होने का अधिकार,
- आराम और विश्राम करने का अधिकार,
- स्वास्थ्य और कल्याण की दृष्टि से समुचित जीवन स्तर रखने का अधिकार,
- शिक्षा का अधिकार,
- समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने का अधिकार।

अनुच्छेद 28 से 30 में यह बताया गया है कि हर व्यक्ति को ऐसी सामाजिक और अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था पाने का अधिकार है जिसमें इस वैश्विक घोषणा में शामिल किए गए सभी मानवाधिकारों को पूर्णतः प्राप्त किया जा सके, कि इन अधिकारों का मात्र इतना ही क्षेत्र सीमित हो कि अन्य लोगों की स्वतंत्रता और उनके अधिकारों को मान्यता दी जा सके ताकि लोकतांत्रिक समाज में नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था और जन कल्याण की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके, और हर व्यक्ति के उस समुदाय के प्रति कुछ दायित्व हैं, जिसमें वह रहता/रहती है (दृष्टव्यः) संयुक्त राष्ट्र के संबंध में कुछ बुनियादी तथ्य/सयुंक्त राष्ट्र सूचना केन्द्र,

नई दिल्ली/2004/पृ. 299)। इस आलोक में हम विवेचन करें तो मनुष्यता और मनुष्य की गरिमा के लिए यह एक वरदान ही था 'घोषणा–पत्र'। प्रो. लास्की का मानना है कि 'अधिकारों की अनुपस्थिति में मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास सम्भव नहीं है, यह कितना सच है', इस बात का अंदाजा मनुष्यता में विश्वास रखने वाला हर मनुष्य कर सकता है। वस्तुतः मनुष्यों को जो प्राकृतिक रूप से अधिकार मिले उसे हम तो मान लेते हैं कि यह उसे जन्म से प्राप्त है लेकिन सच तो यह है कि मनुष्य मानवाधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष तब से कर रहा है जितना पुराना मानव सभ्यता का इतिहास है। सन् 1948 के बाद यह उम्मीद की जा रही थी कि मानव सभ्यता दो युद्धों से सबक लेकर अब ऐसे वातावरण की नव–निर्मिति करेगी जिसमें सभी खुशहाल होंगे। सह–अस्तित्व में, समान–गरिमा के साथ जिएंगे। स्वतंत्रता होगी और बन्धुत्व होगा लेकिन विडम्बना ही यह कही जाएगी कि 9/11 जैसे बड़े ख़तरे हम मनुष्यों के साथ जुड़े। हम अनुराग की जगह नफ़रत में ही सने–गुथे मनुष्य बनकर रह गए। प्रो. हेरॉल्ड लास्की ने जिस व्यक्तित्व के विकास की बातचीत की है उसका पुट हमें मुकद्दर नहीं हुआ। संयुक्त राष्ट्र सार्वभौम घोषणा–पत्र की संकल्पना, ऐसे में वह रचनात्मक और आश्चर्यजनक परिणाम नहीं दे पायी, इसे पूरे साहस के साथ हमें स्वीकार करना चाहिए।

इसके कारणों की अगर हम पड़ताल करें तो यह महसूस होगा कि पश्चिम के प्रति व्याप्त मोह ने हमारी 'मानसिक संरचना' को इस प्रकार बना दिया कि हम स्वार्थ में अंधे हो गए और भौतिक संस्कृति में लिप्त होकर उन नैतिक पहलुओं को छोड़ दिया जहाँ से–करूणा, दया, प्रेम की व्युत्पत्ति होती थी। संयुक्त राष्ट्र सार्वभौम घोषणा–पत्र में सुझाए 30 सूत्री प्रतिज्ञा–पत्र तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक हम 'मनुष्य' का निर्माण नहीं कर लेते क्योंकि यदि मनुष्य में मनुष्य के प्रति भावनात्मक लगाव नहीं होगा, उसके सुख–दुःख, उसकी पीड़ा का एहसास नहीं होगा तब तक वह उसके अस्तित्व पर अतिक्रमण करता रहेगा। उसे उस मनुष्य की भी गरिमा, स्वतंत्रता और समानता की बात सुहायेगी ही नहीं। गांधीजी ने आज से 100 वर्ष पूर्व एक पुस्तक लिखी थी– हिन्द स्वराज। उसमें पश्चिमी सभ्यता का उन्होंने प्रतिकार किया है। वह उस संस्कृति में किसी भी प्रकार की संवेदना नहीं देखते। मामला

आज भी हमारी संस्कृति की संवेदना का है। हमारी संवेदनाएँ जब तक व्यक्ति–मनुष्य के खातिर जागृत नहीं होती तब तक हम सार्वभौम घोषणा पत्र, संविदाएँ और अन्य प्रतिज्ञा–पत्र को ध्वनिमत से उद्घोष कर लें वह हमारे किसी काम की नहीं।

भारत की प्राच्य–संस्कृति की तरफ इसीलिए गांधी मुड़कर वैकल्पिक सभ्यता को विकसित करना चाहते हैं। अपनी जड़ों की ओर लौटो और उसमें सुख की तलाश करो–गांधीजी का यह मत है। इस पहल के बारे में दरअसल गांधी की सोच बहुत व्यापक इस कारण भी बनती है क्योंकि वह भारतीय प्राच्य व्यवस्था में देखते हैं तो यह पाते हैं कि हमारे पूर्वज 'अहिंसा' में ज्यादा विश्वास करते थे। महाभारत में तुलाधार और जलालि (ब्राह्मण) के बीच हुए संवाद को सुनाते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर के सामने ऐसे ही रहस्योद्घाटन किए हैं। अस्तु गांधी की चेतना उन संवेदनाओं से विकसित हुई है, जिसमें प्राणियों के भी अस्तित्व के लिए जलालि ब्राह्मण का त्याग प्रस्फुटित हुआ है। सह–अस्तित्व की इससे बड़ी मिसाल क्या हो सकती है? करूणा और दया का इससे अच्छा उदाहरण क्या हो सकता है? ऐसी चेतना की व्याप्ति भारतीय संस्कृति में है, गांधीजी का कथन है कि उस सहज चेतना की ओर अगर हम अग्रसर हों तो मानवाधिकार की प्रतिष्ठा खुद–ब–खुद होती चली जाएगी। महाभारत के मोक्ष पर्व के 20वें श्लोक में कहा गया है–

अहिंसा सकलो धर्मो हिंसाधर्मस्तथाहितः।
सत्यं तोहं प्रवक्ष्यामि यो धर्मः सत्यवादिनाम।।

– महाभारत (मोक्ष पर्व)/पृ.सं. 5131

अर्थात् अहिंसा ही सम्पूर्ण धर्म है। हिंसा अधर्म है और अधर्म अहितकर होता है। (प्रथम पंक्ति)– जब ऐसे विचारणा से हम समृद्ध रहे हैं तो गांधी की 'जड़ों की ओर लौटो' की संकल्पना सर्वदा उपयुक्त प्रतीत होती है। लेकिन इसके बावजूद हमें आज के परिवेश में रहकर बात करनी है। मानवाधिकार और अहिंसा को आमजन तक पहुँचाना है क्योंकि गांधी के युग में हम एक गुलाम नागरिक थे आज हम स्वतंत्र नागरिक हैं। भारतीय राष्ट्र–राज्य के स्वतंत्र नागरिक हैं। हमें इस व्यवस्था के अनुसार सोचना है। हमें इस व्यवस्था के स्वतंत्र नागरिक के अतिरिक्त भूमण्डलीकरण, साम्प्रदायिकता, साम्राज्यवाद, वर्चस्ववाद और उपभोक्तावाद, बाज़ारीकरण आदि परिवेश को ध्यान में रखकर मानवाधिकार की प्रतिष्ठा करनी है क्योंकि यह एक सच्चाई

है कि जिस परिवेश में हम गुजर–बसर कर रहे हैं उसमें यह ऐसे पहलू हैं जो हमें मानवाधिकारों से वंचित कर रहे हैं।

वंचना की शिकार आबादी के गरिमा की वापसी करनी है। भारत के प्राच्यकाल के मानवीय संवेदना की पीछे चर्चा की गयी, वह अब भी कहीं न कहीं किसी कोने में विद्यमान है। उस चेतना को पुनर्जीवित हम कैसे करें, एक सवाल यह है, तथा दूसरे हमें इन सवालों को ढूंढ़ना होगा कि उसके साथ राज्य ने अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हुए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग जो गठित किया है उसकी संकल्पना, उद्देश्य और लक्ष्य को कैसे सफल बनाएँ। प्रथम कार्य के लिए साधारण तौर पर देखा जाए तो भारतीय संस्कृति और उस संस्कृति के मूल्यबोध को हम प्रकीर्णित करके उनसे हमें प्रेरणा लेने और उसे आचरण में उतारने से सफल होगा। लेकिन दूसरी जो भूमिका है उसे आत्मसात करना इतना आसान नहीं है। उसके कई कारण हैं। कारण यह है कि व्यक्ति के भीतर यह धारणा बन गयी है कि राज्य का यह उत्तरदायित्व है कि वह हमें हमारा हक दिलाए। हमारी गरिमा की रक्षा करे लेकिन वह भूल जाता है कि राज्य को हमारी भी मदद की जरूरत है। व्यक्ति यह भूल जाता है कि राज्य तब तक हमें हमारे वे मौलिक अधिकार, मानवाधिकार नहीं दे सकता जब तक की हम स्वतः चेतस न हो। ऐसे में, व्यक्ति का प्रथमतः खुद को चेतस बनाना चाहिए और अपने आस–पास में ऐसी चेतना विकसित करनी चाहिए जिससे वह अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो सकें। दूसरे, सरकारी तंत्र से पहल जरूर करनी चाहिए अहिंसक रूप से, कि हमें सार्वभौम घोषणा पत्र और भारत सरकार ने ऐसे अधिकार दिए हैं, जिसके आधार पर हमारा नैतिक 'हक' बनता है। सहजता में मनुष्य के बीच ऐसी समस्याएँ प्रायः देखने को मिली हैं। आदिवासी समाज के बीच एक सर्वे के दौरान गढ़चिरौली नक्सली क्षेत्र में मैंने खुद ऐसा महसूस किया। विदर्भ में आत्महत्या कर रहा किसान हो या उड़ीसा के कालाहांडी में भूख से दम तोड़ते लोग, उन्हें अपने हक का पता नहीं है तभी अपने हक की समझ न रहने के कारण मौत को गले वे लगाते रहे। यह भारत के न किसी आयोग की विफलता है और न ही सरकार की विफलता है। यह विफलता है सामाजिक चेतना की, नेतृत्व और योजना की और सहभागिता–प्रणाली के अभाव की।

मानवाधिकार का प्रासार्य तभी सम्भव है जब मानवीय चेतना विकसित हो, ठीक प्रकार से नेतृत्व विकसित हो और योजनाएँ मानवीयता को ध्यान में रखकर निर्मित हो। कुछ प्रकाशनों और कुछ दस्तावेज़ीकरण में सिमटी हमारी मानवाधिकारवादी योजनाएँ अभी वह करिश्मा नहीं दिखा पायी हैं जो उससे अपेक्षा थी। ऐसे में, हम एक कल्याणकारी राज्य होने का दावा नहीं कर सकते क्योंकि कल्याणकारी राज्य की योजनाएँ मनुष्य को केन्द्र में रखकर बनायी जाती है तथा उसके विकास दर को जीडीपी या जीएनपी में हम निर्धारित नहीं करते बल्कि उसके निर्धारण का पैमाना सकल घरेलू कल्याण–जीएनडब्ल्यू में अन्तर्विन्यस्त होता है।

भारत गांवों का देश है और यहाँ की 70 प्रतिशत से अधिक आबादी गांवों में रहती है। यहाँ आदिवासियों की संख्या 8.2 करोड़ है। सीमावर्ती क्षेत्रों की भी आबादी को भी अगर हम चिन्हित करें तो, इनको ध्यान में रखकर हमें इनके बीच मानवाधिकारों को व्यापक पैमाने पर पहुँचाने की जरूरत है। शहरी गरीबी की समस्या से जूझते लोगों के बीच उनके हक को देने की जरूरत है। इसमें भी हमें इस हिसाब से सोचना है कि जो शिक्षा से भी वंचित हैं तथा अपनी सहज प्रकृति में रहने के इच्छुक या आदी हैं, उन्हें हम उनके हक से कैसे आच्छादित कर सकते हैं। इसके लिए निम्न उपाय किए जा सकते हैं। प्रयोग के तौर पर जो कि सहभागिता प्रणाली के उपकरण हैं –

- व्यापक जागरूकता
- सामुदायिक एकजुटता
- नेतृत्त्व का विकास
- सरकारी, गैर–सरकारी, सेवाभावी और स्वैच्छिक लोगों की एकजुटता आदि।

ऐसे कार्यों को निम्न संस्थाओं के माध्यम से भी किया जा सकता है जो जमीनी स्तर पर कार्य में प्रभावी भूमिका निभाती हैं –

- ग्राम पंचायत
- न्याय पंचायत
- जिला पंचायत
- शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा
- शहरी क्षेत्रों की नगरपालिका द्वारा।

गांधीजी ने एक बड़े आन्दोलन के तहत पूरे भारत को जागृत करने का प्रयास किया था। भारत के अन्दर ऐसे सहभागिता प्रणाली के उपक्रम विकसित करने की कोशिश बड़े पैमाने पर मानवाधिकार आयोग कर सकता है। स्वयंसेवी संस्थाएं और सेवाभावी ट्रस्ट कर सकते हैं लेकिन उनके भी कार्य तभी एक योजनाबद्ध तरीके से काम करेंगे जब हम सबकी भागीदारी सुनिश्चित होगी। सहभागिता–प्रणाली विकसित करने की पहल पहले कौन करेगा यह तो भविष्य ही बताएगा, क्योंकि यह उतना आसान नहीं है जितना हम सोचते हैं। यह तभी सम्भव है जब हम भारत के प्रत्येक गाँव को और प्रत्येक व्यक्ति को जोड़ेंगे। हर व्यक्ति के भीतर जागरूकता फैलाएंगे तभी सम्भव है, क्योंकि हम यह कह सकते हैं कि यह हमारी संस्कृति में है और हम जब से सामाजिकीकरण अपना करके सामूहिक तौर पर जीवन यापन करना शुरू किए हैं तभी से इस सहभागिता प्रणाली से आबद्ध हो चुके हैं लेकिन फिर भी यह सच्चाई है कि वह कहीं हमारे साथ प्रसुप्तावस्था में है। आमजन के मानवाधिकार का स्वप्न तभी पूरा हम कर सकते हैं जब सभी को मानवाधिकारों के लिए दिए गए प्रतिज्ञाओं व उनकी उपयोगिता व उपादेयता का महत्व मालूम होगा सहभागिता प्रणाली उसमें मील का पत्थर बन सकती है।

***

मानव अधिकार एवं ग्रामीण जनता

आलोक कुमार यादव*

किसी भी सभ्य समाज में रहने वाले प्रत्येक मनुष्य को यह मौलिक अधिकार प्राप्त है कि उसकी गरिमा, समानता, आजादी के साथ–साथ उसके जीवन को अक्षुण्ण बनाए रखा जाए। इन्हीं संवेदनाओं से जुड़े सहज अधिकारों को मानव अधिकार की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। परस्पर सद्भाव और सबके प्रति आदर, मानव अधिकारों की आधार पीठिका है। जब तक यह सद्भाव और समभाव समाज के भीतर नहीं रहता है तब तक उसमें रहने वाले लोग एक–दूसरे के प्रति अमानवीयता, असंवेदनशीलता तथा असहनशीलता का व्यवहार करने लगते हैं। ऐसे में ही नियमों और कानूनों द्वारा हस्तक्षेप करने की आवश्यकता पड़ती है।

अभी तक मानव अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभियान ग्रामीण भारत तक नहीं पहुँच पाया है जिसके कारण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों में मानव अधिकारों के प्रति वह चेतना विकसित नहीं हो पाई है जैसी कि शहरी इलाकों में है।

हम "वसुधैव कुटुंबकम" के आराधक हैं। हमने विश्व को "जिओ और जीने दो" का आदर्श दिया है। हमारे भारतीय समाज की परस्पर सद्भाव व सहिष्णुता की प्राचीन परंम्परा रही है। आज विकसित देश भारत को मानवाधिकारों की रक्षा करने का पाठ पढ़ाने की बात करके अपने आप को एक हास्यास्पद स्थिति में डाल देते हैं।

10 अक्टूबर 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने मानवाधिकारों की विश्व जनीन घोषणा की। यह एक ऐसा वक्त था जब द्वितीय विश्व युद्ध की पीड़ा से त्रस्त मानवता शान्ति की सुगम स्थली पाने के लिए व्याकुल थी। मानवाधिकारों के संरक्षण का यह प्रयास सराहनीय रहा, तभी से हर वर्ष 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस मनाया जाता है। विश्व शांति का आकांक्षी भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का एक सक्रिय सदस्य रहा व मानवाधिकार

*प्रवक्ता–समाजशास्त्र, विवेकानन्द ग्रामोद्योग स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दिबियापुर, (औरैया) (उ. प्र.)

संबंधी संयुक्त राष्ट्र संघ की सार्वभौमिक घोषणा का भारत ने यथोचित सम्मान किया है।

भारत का संविधान उन सभी विचारों, आदर्शों, मूल्यों मानकों और शब्दावलियों का प्रशंसनीय ढंग से उल्लेख करता है। हमारे संविधान की प्रस्तावना का लक्ष्य वास्तव में समस्त विश्व के लिए प्रेरणा की किरणें है।

भारत की मानवाधिकार संरक्षण एवं संवर्धन के प्रति जागरूकता इसी बात से स्पष्ट है कि हमने विश्व मानवाधिकारों के अधिकांश अभिसमयों को अपनाया। साथ ही इनके सुझावों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की घोषणा 27 सितम्बर 1993 को की। मानवाधिकार जैसे संगठनों का निर्माण व्यक्ति के जीवन को सामान्य ढंग से जीने के लिए बनाया गया। अतः मानवाधिकारों के उल्लंघन के मामलों को आयोग गंभीरता से लेता है इसका कारण यह है कि आयोग का लक्ष्य दोषी व्यक्तियों को दंडित करना ही नहीं होता बल्कि पीड़ित व्यक्ति को तत्काल सहायता प्रदान करना भी होता है। इन्हीं कार्यों की सुनवाई करने के लिए अधिनियम की धारा 30 में मानवाधिकार न्यायालयों की स्थापना के बारे में प्रावधान किया गया है। ऐसे न्यायालयों की स्थापना राज्य सरकार प्रत्येक जिले में कर सकती है। ऐसा करने के पीछे सरकार की यह मंशा होगी कि सामान्य जनमानस के अधिकारों का हनन होने पर ये न्यायालय त्वरित गति से मामले का निराकरण करके पीड़ित व्यक्ति को राहत पहुँचाएं।

लेकिन किसी भी कानून की सार्थकता तभी सिद्ध हो सकती है जब कि इसका लाभ प्रत्येक व्यक्ति को मिले। हर वर्ष 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस मनाया जाता है, यूनेस्को, यूनिसैफ और संयुक्त राष्ट्र संघ की अन्य एजेंसिया इन पर यथाशक्ति चर्चा करती है, वाद–विवाद होते है, तमाम सेमिनार और गोष्ठियां होती हैं। इन सबका उददेश्य मानवाधिकारों के हनन को रोकना व मानवाधिकारों के बारे में जागरूकता फैलाना होता है। इस विषय पर कोई भी गंभीर चर्चा करने से पहले कुछ सवाल स्वाभाविक रूप से उपजते हैं। मसलन इक्कीसवीं सदी में भी समकालीन विश्व व्यवस्था मानवाधिकारों कितना परिवर्त्तन करा पाती है ? कृषि प्रधान देश भारत में मानवाधिकारों की वर्तमान स्थिति क्या है ? जहां भारत की आज भी दो

तिहाई जनसंख्या निवास करती है क्या उन गांवों में किसानों के अधिकारों का प्रवर्त्तन हो पाया है ? प्रेमचन्द के गोदान से लेकर वर्तमान तक के समाज ने इन आम किसानों के मानवाधिकारों का कितना ख्याल रखा है ? भारत में दलित या मजदूरों को कितना हक मिल पाया है ? ऐसे ढेरों सवाल हैं ? जिन पर विचार किए बिना मानवाधिकारों पर कोई भी चर्चा पूर्ण, संतुलित या न्यायपूर्ण नहीं कही जा सकती।

भारतीय संविधान एवं मानवाधिकार का एक दूसरे से गहरा लगाव है। दोनों ही उन्नति के अवसर प्रदान करते हैं और पीड़ित व्यक्ति को तत्काल राहत पहुँचाते हैं अफसोस तो इस बात का है कि गरीब एवं असहाय ग्रामीण जन को इन कानूनों की जानकारी देने वाला कोई नही है, जिस कारण ग्रामीण क्षेत्रों की जनता आयोग द्वारा जनहित के लिए बनाये गये नियमों के बारे में जानती ही नही। परिणाम यह हो रहा है कि आज भी लोगों के अधिकारों का हनन हो रहा है।

स्वतंत्रता से पूर्व ब्रिटिश शासन के दौरान तथा स्वतंत्र भारत के 6 दशकों में मानवाधिकारों की स्थिति विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में नितांत शोचनीय रही है। ग्रामीण समाज में बंधुआ मजदूरी, बाल मजदूरी, नारी उत्पीड़न, वेश्यावृत्ति, आतंकवाद, नस्लवाद, साम्प्रदायिकता तथा साहूकारों से ऋण लेकर व्यतीत होने वाले जीवन इत्यादि रूपों में नित्य मानवाधिकारों का हनन होता रहा है जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नप्रकार हैः–

जिनके कपितय प्रमुख कारण निम्न है –

शिक्षा : मानवाधिकारों के प्रति किसी भी व्यक्ति की उदासीनता का सबसे प्रमुख कारण शिक्षा का अभाव है। जनगणना 2001 के अनुसार भारत की साक्षरता 64.84 प्रतिशत ही है। सरकार के लाख प्रयास करने के बाद भी देश में विशेषकर ग्रामीण भारत में शिक्षा के स्तर में कोई सुधार नहीं हुआ। सरकार द्वारा निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान किया हुआ है, इसके साथ स्कूलों में दोपहर का भोजन भी उपलब्ध कराया जाता है। इसके बावजूद बच्चों को विद्यालय तक ला पाना एक कठिन कार्य बना हुआ है। सन् 2007 तक 6–11 वर्ष के स्कूल न जाने वाले बच्चों की संख्या 39 लाख 76 हजार बनी हुई है। स्कूल जाने वाले बच्चों का एक महत्वपूर्ण प्रतिशत पांचवी के बाद

पढ़ाई को जारी नहीं रखता। इस प्रकार आबादी का एक बड़ा भाग अशिक्षित है और जब देश के अधिकांश लोगों को अपने अधिकारों का ज्ञान ही नहीं होगा तो वे किस प्रकार उनके हनन का विरोध करेंगे।

गरीबी एवं बेरोजगारी : भारत गांवों का देश है अतः ग्रामीणों के उत्थान किए बिना कोई भी अधिकार व योजना पूर्ण नहीं मानी जा सकती। आज भारत विश्व में मजबूत आर्थिक शक्ति के रूप में उभर रहा है। विश्व बैंक की ताजा रिपोर्ट के अनुसार भारतीय अर्थव्यवस्था विश्व की चौथी बडी अर्थव्यवस्था हो गई है लेकिन फिर भी ग्रामीण क्षेत्रों में बदहाली बनी हुई है। जिसका खुलासा 2003 की यू.एन.डी.पी. रिपोर्ट से होता है जिसके अनुसार भारतीय समाज अत्यधिक असमान समाज है जिसमें मात्र 10 प्रतिशत लोग धनी हैं और जो 33.5 प्रतिशत संसाधनों का उपभोग करते है और अति गरीब 10 प्रतिशत लोग केवल 3.5 प्रतिशत संसाधनों का उपभोग करते है सरकारी आँकडों के अनुसार हमारे यहां 26 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे रह रहे हैं। एक आंकड़ें के अनुसार सन् 1994 में बेरोजगारों की संख्या 3 करोड 77 लाख हो गई थी इनमें 62 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 38 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों से थे। देश की आजादी प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी करीब 24 करोड़ लोग अभी भी गरीबी रेखा से नीचे जीवन गुजारने के लिए मजबूर हैं। इन विकासशील देशों के नागरिकों की गरीबी उन्हें मानव अधिकारों से वंचित रखती है। परन्तु आज समय आ गया है, जब मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में अन्तर्निहित सिद्धान्तों व मूल्यों का पालन करने हेतु सभी संकल्प लें।

स्वास्थ्य : स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता विशेष रूप से गरीबों व पीडित वर्गो को उनके मानव अधिकारों से वंचित रखती है। आज स्वास्थ्य के क्षेत्र में एच. आई. वी. एडस् एक बड़ी चुनौती के रूप में सामने आया है। कुछ विशेषज्ञों के अनुसार हमारे देश में इस रोग से संक्रमित या प्रभावित लोगों की संख्या विश्व के अन्य देशों की तुलना में दूसरे नम्बर पर है। इस दिशा में हुए अध्ययन बताते हैं, कि यह रोग अब संक्रमित समूहों से आम जनता के बीच फैलने लगा है, शहरों से इसने गांवों की ओर रूख किया है, और चिंता की बात यह है कि इस रोग से प्रभावित पुरुष एवं महिलाओं की संख्या धीरे–धीरे बढ़ती जा रही है। इस बीमारी के साथ जुड़ा सामाजिक दाग व

सामाजिक बहिष्कार जैसे हालातों ने उनके मानव अधिकारों को प्रभावित किया है। इस दिशा में इस रोग से लड़ने व पीड़ितों की चिकित्सा एवं राहत का बीड़ा उठाना होगा।

ग्रामीण महिलायें : दुनिया में ऐसा कोई भी देश नहीं है जहां महिलाओं को हाशिए पर रखकर कोई विकास संभव हुआ हो। महिलाओं को विकास की मुख्यधारा से जोड़े बिना किसी भी अधिनियम, समाज व देश के पूर्ण सफलता की कल्पना नहीं की जा सकती। इसके साथ यहां इस बात पर गौर करना होगा, कि आज इन महिलाओं की संख्या में से आधी से ज्यादा महिलाएं बालिका वधु हैं। ताजा आंकड़ें बताते हैं कि हमारे देश में 64.7 प्रतिशत लड़कियों को 18 साल से पहले दुल्हन बनना पडता है। दूसरे शब्दों में, 100 में से करीब 65 लड़कियों को 18 वर्ष की आयु से पहले विवाह कर दिया जाता है यही नही, 100 में से 9.1 प्रतिशत लड़कियों की शादी 12 वर्ष की उम्र तक कर दी जाती है। और तो और आज भी महिलाओं को परंपरा, संस्कृति की दुहाई देकर उन्हें पुरुषों पर आश्रित व चारदीवारी के अंदर तक सीमित रखने की कोशिश की जाती है। इसी कारण वर्तमान में महिलाओं को इतिहास में निचले पायदान पर स्थान मिला हुआ है। आज भी महिलायें पुरुषों के द्वारा शासित, इस भूमंडल का सबसे कमजोर तत्व है। इस सदी की सबसे बड़ी चुनौती महिलाओं का सशक्तिकरण है तथा इस हेतु ठोस कानूनी पहल समय की मांग है।

न्याय पंचायतें : भारत में प्राचीन काल से ही ग्राम पंचायतें या जाति पंचायते या पेशे (वृत्ति) पर आधारित व्यक्तियों की पंचायतें स्थानीय स्तर पर न्याय पंचायतों का कार्य भी करती रही हैं। स्वतंत्रता के पश्चात अपनाए गए संविधान के बाद देश में विधि का शासन प्रवर्तित है तथा कोई भी व्यक्ति कानून के ऊपर नही हैं। देश में न्यायपालिका को स्वतंत्र रखते हुए निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था की गई किन्तु आज भी भारतीय ग्रामों में स्थानीय पंचायते विशेषतः जाति पंचायतें अपनी परम्परागत मान्यताओं, रूढियों, सामाजिक मूल्यों के अनुसार निर्णय करती हैं सामाजिक दबाव के चलते प्रायः इन पंचायतों के निर्णय बाध्यकारी होते है चूँकि इनकी न्याय निर्धारण प्रक्रिया में अनौपचारिक व कानूनी प्रविधि नहीं अपनायी जाती है अतः व्यक्ति के मानवाधिकारों का खुला उल्लंघन होता रहता है। जिनके कपितय उदाहरण निम्न हैं –

- सितम्बर 2007 में हरियाणा के करनाल जिले की कतलाहेडी गांव की बाल्मिकी समाज की पंचायत ने एक ही गोत्र में शादी करने पर पवन एवं कविता को न केवल भाई–बहिन की तरह रहने का आदेश दिया बल्कि उनसे 6 दिन की बेटी को भी छीनकर एक निःसन्तान दम्पत्ति को सौंप दिया । साथ ही पवन एवं कविता पर 60 हजार रूपये का जुर्माना भी ठोक दिया गया।
- अगस्त 2004 में उदयपुर जिले की कोटडा तहसील के अन्तर्गत मालवा का चौरा में सेलपिया की नाल गांव की पंचायत ने 6 साल के बालक चतराराम पर 65 हजार का जुर्माना यह कहकर ठोक कि उसके द्वारा फेंके गए पत्थर से हीरा का घोड़ा मर गया है जबकि गांव वालों का कहना था कि घोड़ा नदी में गिरने से मरा है।

उपर्युक्त वर्णित कपितय कारणों एवं उदाहरणों से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्र आज भी विधि सुविधाओं से वंचित है। आजादी के / 52 वर्ष बीत जाने पर भी भारत की आबादी का बृहद भाग अशिक्षित है और जो शिक्षित भी है उनमें विधिवेत्ताओं को छोड़कर आज शिक्षित नागरिकों को भी विधि का ज्ञान नहीं होता। अतः सरल भाषा में विधि का ज्ञान विधि साक्षरता के अन्तर्गत आज की आवश्यकता है। मानवाधिकार के सम्बन्ध में भी यही बात है, आज निरंतर मानवाधिकार का हनन हो रहा है।

ऐसी स्थिति में जब कि हम सभी दिन–प्रतिदिन प्रगति के मार्ग पर चलने की कोशिश कर रहे हों, अपने ही राष्ट्र में अपने ही लोगो के अधिकारो का हनन करना मानवीयता के बिल्कुल ही खिलाफ है। भारत तो गांवों का देश है, राष्ट्र की अधिकांश जनता ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, उनके अधिकारों से परिचित कराना और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें न्याय दिलाना समय की मांग है। आइये ,इस सदी में मानव अधिकारों के संरक्षण एवं संवर्धन की दिशा में कार्य करने का संकल्प लें, तथा इस महान अभियान में अग्रणी योगदान देकर इस चुनौती को पूरा करने का प्रयास करें।

***

> ईश्वर द्वारा निर्मित हवा–पानी की तरह सब चीजों पर सबका समान –अधिकार होना चाहिए।
>
> **महात्मा गांधी**

साक्षात्कार

साक्षात्कार

दान नहीं अधिकार दीजिए

प्रो. शांता सिन्हा*

"राष्ट्रीय बाल–अधिकार संरक्षण आयोग" मार्च 2007 में बाल अधिकार संरक्षण आयोग अधिनियम 2005 के अंतर्गत एक वैधानिक निकाय के रूप में गठित एक ऐसी संस्था है, जो बाल–अधिकारों का संरक्षण कर उन्हें एक गरिमामय एवं ख़ुशहाल जीवन प्रदान करने के साथ–साथ इन अधिकारों के हनन के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ बुलन्द कर, आवश्यक कदम उठाती है। बच्चे किसी भी समाज व राष्ट्र के स्वर्णिम भविष्य होते हैं। पर बड़े दुख एवं अचरज की बात है कि कल का भविष्य कहे जाने वाले बच्चों के अधिकरों का गरिमा को संरक्षित करने की बजाय हम उन्हें एक ऐसे भविष्य की ओर धकेल रहे हैं, जहाँ सिवाय अंधेरे के और कुछ भी नहीं। आज यह एक वैश्विक समस्या है पर हमारे भारत में यह आंकड़ा अपनी सीमाएं लांघ रहा है, जो हमारे जैसे विकासशील देश के लिए चिन्ता का विषय है। इन अधिकारों के हनन के अंतर्गत – बाल श्रम, बच्चों की ख़रीद–फ़रोख्त, बाल–विवाह, बाल वेश्यावृत्ति, बाल उत्पीड़न जैसी कुप्रथाएं हमारे समाज में आज भी व्याप्त हैं। भारत में तमाम नियम–.कानूनों के बावजूद भी आज बड़े उद्योग धंधों से लेकर घरेलू नौकर के रूप में ये मासूम बचपन पिस रहा है। ये अबोध हैं, मासूम है, मजबूर हैं, नहीं जानते अधिकार, कर्त्तव्य और दुनियादारी की परिभाषा। पर हम बड़े तो जानते हैं। आज आज़ादी के 62 वर्षों बाद भी, संविधान द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकरों की महत्ता को समझने वाले हम सभी, बाल अधिकारों का शोषण ही नहीं कर रहे अपितु इनका सारा जीवन नष्ट कर रहे हैं, जो एक राष्ट्रीय त्रासदी है। इन सभी पहलुओं पर पद्मश्री और मैगसेसे पुरस्कार से सम्मानित "राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग" की अध्यक्ष प्रो. शांता सिन्हा से बाल–अधिकारों के संदर्भ में नीता अग्रवाल ने बहुत सी जिज्ञासाओं का समाधान पाने की कोशिश की। पेश है बातचीत के

* अध्यक्ष – राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग, भारत

कुछ अंश

प्रश्न : सबसे पहले तो हम आपसे यह जानना चाहेंगे कि बच्चों के संदर्भ में "अधिकार संरक्षण" का क्या अभिप्राय है?

उत्तर : बच्चों के संदर्भ में 'अधिकार संरक्षण' का अभिप्राय है – बाल अधिकारों को सुरक्षा प्रदान करना। एक अबोध बालक अपने अधिकारों का अर्थ व उनकी महत्ता से अनभिज्ञ होता है। अतः कई बार समाज के लोगों द्वारा इन बाल अधिकारों का हनन किया जाता है, उन्हें शोषित किया जाता है। उसका रूप चाहे जो भी हो परन्तु बाल अधिकारों का हनन निश्चित रूप से होता है। अगर अधिकार संरक्षण के और विस्तृत अर्थ पर जाएं तो यहीं कहेंगे कि इसका अभिप्राय है – बाल जीवन से जुड़े प्रत्येक तथ्य जैसे – स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि जैसे बुनियादी अधिकारों से लेकर अभिव्यक्ति तक के अधिकारों को एक सुरक्षा कवच देकर संरक्षित करना, ताकि प्रत्येक बालक इस संरक्षण के आधार पर अपने भविष्य की सुदृढ़, सफल, सुनियोजित और गरिमामय नींव बनाकर भविष्य के सपनों को साकार करने में सक्षम हो। प्रायः ऐसा पाया जाता है कि आज भी जनमानस में बच्चों से जुड़े मुद्दों पर एक उदासीनता का रूख़ है। एक अबोध बच्चा अपने अधिकारों का उपयोग व उन्हें संरक्षित करने में असमर्थ होता है अतः कई बार स्वयं अपने पालनकर्त्ताओं द्वारा या अन्य व्यक्ति द्वारा शोषित किया जाता है। ऐसे में "बाल अधिकार संरक्षण आयोग" का जन्म होना भी एक स्वाभाविक पहलू है। अतः "बाल–संरक्षण" का अभिप्राय है बाल–जीवन से जुड़े सभी मुद्दों, उनके अधिकारों को संरक्षण प्रदान कर उन्हें अधिकार पूर्ण जीवन जीने का अधिकार प्रदान करना।

प्रश्न : संविधान ने हमें बहुत सारे मूलभूत अधिकार प्रदान किए हैं। पर क्या कारण है कि आज आज़ादी के इतने वर्षों बाद 'विशेष तौर पर बच्चों के लिए' ऐसे आयोग की आवश्यकता क्यों महसूस हुई?

उत्तर : भारत देश में "विशेष तौर पर बच्चों" से संबंधित इस आयोग की नितान्त आवश्यकता थी। आंकड़ों के अनुसार भारत का बाल–भविष्य बहुत ख़तरे में है। जैसे बच्चों के जन्म से ही जुड़ी कुपोषण की

समस्या, स्वास्थ्य समस्या, अशिक्षा, बालश्रम, बाल विवाह, बाल उत्पीड़न और अन्य भी कई अमानवीय तथ्य बाल जीवन को न सिर्फ खोखला कर रहे हैं बल्कि आज़ाद देश में उनके अधिकार पर एक प्रश्न चिह्न भी अंकित कर रहे हैं। उदाहरण के तौर पर भारत में लगभग 1.26 करोड़ "बाल श्रमिक" हैं। 6 से 14 वर्ष के बीच की आयु के औसतन 1.34 करोड़ बच्चे स्कूल नहीं जाते। करीब 57 प्रतिशत बच्चे 8 वीं कक्षा तक आते–आते स्कूल छोड़ देते हैं। केवल 22 प्रतिशत बच्चे ही 10 वीं कक्षा पास कर पाते हैं। अनुमानतः हमारे देश का हर चौथा बच्चा किसी न किसी रूप से कमजोर है, पिछड़ा हुआ है और इन्हीं अभावों के चलते समाज में बाल–जीवन से जुड़े अन्य अभिशाप भी मौजूद हैं। और उस पर भी दुर्भाग्य एवं विडम्बना यह है कि समाज के लोगों द्वारा इन बच्चों हेतु अगर कोई सहायता की जाती है तो उसे नाम दिया जाता है, दान जबकि यह दान कार्य नहीं है। बच्चों के अधिकारों का संरक्षण एक दान नहीं यह उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। किसी भी बालक को जन्म से ही नहीं वरन् गर्भकाल से ही संरक्षण प्रदान करना हमारा कर्त्तव्य है, तथा उनका यह महत्वपूर्ण अधिकार है । किसी कारणवश अगर वह अधिकार, का संरक्षण नहीं कर पा रहा या उसके खुशहाल जीवन के अधिकार का हनन हो रहा है तो उसके विरूद्ध अपनी आवाज़ बुलंद करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। समाज व राष्ट्र के बच्चे अपने अधिकारों के अंतर्गत अपना चहुँमुखी विकास कर सकें यही इस आयोग का मुख्य आधार स्तम्भ है – राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग का और हमारे देश में इसकी बहुत आवश्यकता थी।

प्रश्न : बाल अधिकारों के संरक्षण की बात करें तो हम पायेंगे कि बाल–अधिकारों का हनन जैसे –बाल–श्रम, बच्चों का अवैध व्यापार, बाल विवाह, बाल वेश्यावत्ति, बंधुआ मज़दूरी या भारीरिक व मानसिक उत्पीड़न लगभग प्रत्येक काल एवं स्तर पर होता चला आया है। ऐसे में 'बाल–अधिकारों के संरक्षण' पहले और आज के संदर्भ में आप क्या अंतर पाती हैं?

उत्तर : बाल अधिकारों के संरक्षण के संदर्भ में पहले और आज में यह अंतर

है कि पहले बाल अधिकारों के विषय में आम जनमानस में जानकारी व जागृति का अभाव था। उदाहरण के तौर पर – अगर विद्यालय में एक बच्चे को मारा जाता था तो इसे एक साधारण बात मानी जाती थी। इसी प्रकार बंधुआ मज़दूरी तथा बाल श्रम या बाल विवाह की बात थी। ये सब बातें तत्कालीन समाज में स्वीकार्य थीं। अतः इन पर न तो जानकारी जुटाना चाहते थे लोग, न ही ज़रुरत समझते थे और न ही कभी चेतनात्मक रवैया अपनाया गया। इसका कारण यह था कि लोग अपने अधिकारों के प्रति तो जागृत थे परंतु उनमें बाल अधिकारों की महत्ता को समझने का सर्वथा अभाव था। परन्तु आज के परिप्रेक्ष्य में जनता जागरूक है। आज अगर विद्यालय में बच्चे की पिटाई होती है तो अभिभावक तथा अन्य जन इसे बाल अधिकारों के विरूद्ध मानते हुए उस विद्यालय अथवा अध्यापक के विरूद्ध खड़े हो जाते हैं। वह बात संचार माध्यमों की प्रमुख खबर बन जाती है। लोग उन विषयों पर वाद–विवाद करना पसंद करते हैं – सच्चाई की तह तक जाना चाहते हैं। अगर बाल विवाह, बाल उत्पीड़न या अन्य कोई ख़बर होती है तो आज उसका छिप पाना आसान नहीं। पहले और आज के परिदृश्य में सबसे बड़ा अंतर है – पारदर्शिता का अंतर – पहले ये कुप्रथाएं छिपी हुई थीं और जन चेतना का भी अभाव था। आज जनता जागरूक है।

प्रश्न : "राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग" का गठन अभी हाल ही की घटना है, पर इतने अल्पसमय में अनेक उल्लेखनीय कार्यों के द्वारा इसने अच्छी–खासी प्रतिष्ठा अर्जित कर ली है। हम जानना चाहेंगे कि 'बाल–अधिकारों के संरक्षण' के संबंध में आयोग ने क्या–क्या महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं?

उत्तर : धन्यवाद। बाल–अधिकारों के संरक्षण के संदर्भ में अभी बहुत कार्य किए जाने शेष हैं। एक विशाल समस्या के भंडार का सिर्फ़ ऊपरी हिस्सा ही हमने अभी छुआ है। इसे आप एक मजबूत नींव की शुरूआत कह सकते हैं। हम समझते हैं कि किसी भी व्यक्ति को अपने कर्त्तव्यों का पालन करने हेतु कहने से पूर्व सर्वप्रथम शुरूआत स्वयं से ही करनी चाहिए। इस संदर्भ में अपना आईना स्वयं बनना चाहिए।

विश्वस्तर पर हमारे देश में सबसे अधिक 'बाल–श्रमिक' हैं – जिनकी संख्या लगभग 12.7 मिलियन है। ग़ौरतलब है कि पिछले कुछ वर्षों से पटाखा उद्योग जैसे ख़तरनाक उद्योगों की संख्या में लगभग वृद्धि ही पाई गई है और बदक़िस्मती से हमारे देश के बहुत से मासूम बच्चे भी इन ख़तरनाक उद्योगों में मज़दूरी करते हैं। अतः आयोग ने श्रम मंत्रालय को इस संदर्भ में उचित ध्यान देने का अनुरोध किया है। आयोग ने सन् 1987 में स्थापित राष्ट्रीय बाल श्रम उन्मूलन योजना के पुर्नविचार हेतु संस्तुति की है।

राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग की तथ्य अन्वेषक प्रकोष्ठ ने सर्वेक्षण में पाया कि संपूर्ण भारत में बिहार का जमुई जिला एक आदिवासी इलाक़ा है। ये सबसे पिछड़ा क्षेत्र है जहां बेहद निराशाजनक साक्षरता दर है तथा वह बिहार से बाहर भी बाल मज़दूरी करने हेतु मजबूर हैं लेकिन आयोग के प्रयासों के चलते बिहार में अब स्थिति इतनी दुष्कर नहीं है। वहां अशिक्षा, बाल श्रम तथा ख़तरनाक उद्योगों में लगे बच्चों की संख्या – इन सब तथ्यों की कमी का सकारात्मक परिणाम दृष्टिगोचर होता है। बिहार में लगभग 1,200 बच्चों को अब अपना घर नहीं छोड़ना पड़ा।

बिहार के जमुई जिले में आज सर्व शिक्षा अभियान की लहर के चलते आर – बी – सी. हैं। और जनमानस में शिक्षा के प्रति जागृति है। ग्राम–पंचायतों की सहायता से वहां जल हेतु हैंडपम्प, सौर लैम्प, शौच इत्यादि की पर्याप्त व्यवस्था है।

बिहार के अतिरिक्त आयोग द्वारा राष्ट्रीयस्तर पर 'बाल–श्रम' उन्मूलन तथा विशेष तौर पर स्थानांतरित बालकों के संरक्षण हेतु कई योजनाओं एवं नीतियों पर सक्रिय रूप से काम चल रहा है।

आयोग सर्व शिक्षा अभियान पर हर संभव बल देता है तथा आयोग ने राज्य सरकारों के सभी सचिवों को स्कूलों में होने वाली शारीरिक सज़ा के ख़िलाफ नोटिस जारी किए। साथ ही बच्चों से होने वाली किसी भी अंहिसा तथा स्कूलों में होने वाला शारीरिक सजा के विरुद्ध बच्चों के संरक्षण हेतु कई सक्रिय समूहों का गठन भी किया जो कि सफल रूप से अपना कार्यभार संभाल रहे हैं।

आयोग ने बाल–यौन उत्पीड़न के ख़िलाफ़ दिशा–निर्देश जारी किए। राज्यों और स्कूल प्रबंधकों को बाल स्वास्थ्य और पौष्टिक आहार नीति बनाने हेतु अनुरोध किया। अलावा इनके बहुत से राज्यों में बाल–जीवन से जुड़े आवश्यक आंकड़े जुटा–वहां के बच्चों के सुखद भविष्य हेतु उनके अधिकारों को संरक्षित किया – जैसे महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, राजस्थान आदि स्थानों पर जाकर वहां के बच्चों की मूल समस्याओं को समझ कर आवश्यक नीति एवं योजनाओं को कार्यान्वित कर बाल–अधिकारों को सुरक्षा प्रदान की। आयोग जगह–जगह पर जाकर जन–सुनवाई भी करता है। गौरतलब है कि इनमें विशेष तौर पर बच्चों की सुनवाई पर विशेष ग़ौर किया जाता है।

प्रश्न : बाल अधिकारों को भी अलग–अलग श्रेणियों में बांटा गया है जैसे–सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक। इसका अभिप्राय स्पष्ट करें?

उत्तर : बाल अधिकारों को उनके संरक्षण का पर्याप्त सुख मिले इसलिए इसे अनेक श्रेणियों में बांटा गया है।

इस प्रकार बाल अधिकारों की कई श्रेणियाँ बनाईं जिससे उस श्रेणीगत बालकों पर अलग से तथ्य अन्वेषक प्रकोष्ठ बनाकर उन पर आंकड़ें व स्थिति जुटाकर उस संदर्भ में बच्चे के अधिकार व उन्हें संरक्षित किया जा सके। जैसे बाल–श्रम के अंतर्गत हमने स्ट्रीट चिल्ड्रन, बंधुआ मज़दूर, परंपरागत घरेलू कार्यों में लगे बच्चे, यौन व्यभिचार पीड़ित बालक, स्थानांतरित बालक और घरेलू नौकर। इस तरह से बाल–श्रम को श्रेणीबद्ध किया ताकि एकमात्र इसी समस्या पर जब विचार करें तो उसके हर पहलू को ध्यान में रखकर उस पर सर्वेक्षण, कार्यप्रणाली और कार्रवाई की जा सके। परंतु हमारा यह कहना क़तई नहीं कि बालक को श्रेणीबद्ध किया जाए। उसके अधिकार हनन का दायरा श्रेणीबद्ध किया जा सकता है परन्तु बच्चे का विभागीय स्तर पर विभाजन न हो इसके लिए हम पूर्णरूपेण प्रयासरत हैं। बच्चा एक संपूर्ण इकाई है। उसके पीड़ामुक्त होने के अधिकार को प्रत्येक स्तर पर संरक्षण देना हमारा उत्तरदायित्व है। ताकि बालक का सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मानसिक हर प्रकार से संपूर्ण विकास हो सके। अतः इस बारे में फिर एक बार इसी बात पर बल देते हैं कि बच्चा एक इकाई है। उसे हमें संपूर्ण रूप से देखना है उसके अधिकार हनन को श्रेणीबद्ध जरूर किया जा सकता है परन्तु

उन्हें इस पीड़ा से निजात दिलाने हेतु अलग–अलग विभागों जैसे शिक्षा विभाग, स्वास्थ्य विभाग, पुलिस विभाग, किशोर घर, महिला एवं बाल विभाग यानि जिन–जिन विभागों के दखल की आवश्यकता है उसे उस विभागीयस्तर पर उचित उपचार मिले। न कि वह बालक विभाजित हो कर रह जाए, ऐसा न हो, इसके लिए भी आयोग अपने संपूर्ण प्रयास करता है। हमें बच्चों के संपूर्णविकास के उत्तरदायित्व को निभाना हैं। यह कार्य केवल आयोग का नहीं अपित प्रत्येक भारतीय का होना चाहिए।

प्रश्न : बाल–अधिकारों के संरक्षण के समक्ष सबसे अहम् चुनौती है– बाल–श्रम, बच्चों की ख़रीद–फ़रोख़्त, बाल वेश्यावृत्ति और बाल विवाह। इनको जड़ से समाप्त करने के संबंध में आयोग की भविष्य की क्या नीतियाँ एवं योजनाएं हैं?

उत्तर : इन सभी अभिशापों से मुक्ति का एकमात्र महत्वपूर्ण और सशक्त उपाय है – शिक्षा, उक्त आयोग ने इन सभी समस्याओं को जड़ से समाप्त करने के संदर्भ में निःशुल्क शिक्षा अभियान, सर्व शिक्षा अभियान, ब्रिज कोर्सेस पर अधिक बल दिया है। क्योंकि बाल श्रम, बच्चों का अवैध व्यापार, बाल वेश्यावृत्ति, बाल विवाह और अन्य समस्याएं जैसे इत्यादि इन सबकी प्रमुख जड़ है – अशिक्षा का बोलबाला यानि शिक्षा का अभाव। जब समाज शिक्षित होगा तो सभी सब समस्याएं भी कम होंगी। क्योंकि यह सब अधिकतर ग़रीबी के चलते किए या करवाए जाते हैं। ग़रीबी का मूल कारण है शिक्षा का अभाव। अतः पहला तथ्य, पहली मांग है – शिक्षा। इन सब समस्याओं को निर्मूल करने हेतु आयोग बहुत सी महत्वपूर्ण नीतियां व योजनाएं बना रहा है, जिनमें तमाम सरकारी विभाग, ग़ैर सरकारी संगठन, तथा आम जनता के साथ ही स्कूल कॉलेज के युवा तथा बच्चों की सहभागिता है। हालांकि इस ओर हम शुरू से ही प्रयासरत हैं। बहुत जगह जैसे बिहार, आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश, प. बंगाल, महाराष्ट्र, राजस्थान आदि इलाक़ों में हमारे प्रयास सफल रहे हैं परंतु अभी इन क्षेत्रों में इन सभी अभिशापों से बाल जीवन को निजात दिलाने के संबंध में बहुत कुछ किया जाना शेष हैं। इस संबंध में हमने विशेष तौर पर स्थानांतरित आदिवासी बच्चों हेतु राज्य सरकारों को अधिकाधिक छात्रावास सुविधा उपलब्ध कराने पर बल दिया है।

प्रश्न : इनके अतिरिक्त समाज के कुछ वर्गों के मासूम बच्चे शरीरिक एवं मानसिक उत्पीड़न के शिकार हैं, जो हमारे देश व समाज हेतु एक अभिशाप है। इन्हें इस पीड़ा से निजात दिलाने के लिए आयोग के क्या प्रयास हैं?

उत्तर : इस प्रकार का उत्पीड़न हमारे, राष्ट्र व समाज हेतु बहुत शर्म की बात है कि आज के स्वतंत्र भारत में भी यह अशोभनीय घटनाएं घटित हो रही हैं। इस समस्या को समाप्त करने हेतु आयोग ने समितियां बनाने पर बल दिया है। जिस प्रकार स्कूल में बच्चों हेतु अभिभावको, तथा अध्यापकों की समिति होती है, उसी प्रकार हर मोहल्ले, क्षेत्र, गांव, कस्बे, प्रांत इत्यादि स्तर पर भी समितियों का निर्माण हो। जिनमें उस क्षेत्र के हर बालक के हितों को मद्देनज़र रखते हुए उसकी स्थिति का आकलन हो तथा प्रत्येक बच्चे का शिक्षा के मंदिर जाना अनिवार्य हो तथा साथ ही बाल हित से संबंधित अन्य पहलुओं पर भी ग़ौर किया जाए कि कहीं कोई बालक किसी भी प्रकार के उत्पीड़न का शिकार तो नहीं? यह ध्यान रखा जाए। यदि ऐसा पाया जाए तो उसे उस अभिशाप से बाहर निकलवाकर उसके अधिकारों को पूर्णतः संरक्षण प्रदान किया जाए। इस समस्या के निराकरण हेतु आयोग ने मोहल्ला संगठनों तथा ग्राम पंचायतों को यह जिम्मेदारी दिलवाई कि मोहल्ले व गांव के प्रत्येक बच्चे से जुड़े अधिकार व हितों की चर्चा उस संगठन या समिति में की जाए।

इन्हें नगर–निगम वार्ड के अंतर्गत बांटा गया है। जिसमें हर वार्ड के ज़िम्मे 700 से 800 बच्चे आते हैं और इतने बच्चों का लेखा–जोखा रखने में वार्डों को सुविधा भी रहेगी। यह वार्ड इस बात की जानकारी रखेंगे कि किसी बालक के साथ किसी भी स्तर पर किसी भी प्रकार का उत्पीड़न तो नहीं हो रहा या वह बालक बाल–वेश्यावृत्ति तथा शारीरिक या मानसिक उत्पीड़न का शिकार तो नहीं? यदि ऐसा है तो तुरन्त कार्यवाही हो और बालक को संरक्षित किया जाए। इसी संदर्भ में आपको सूचित करना चाहती हूं, कि केरल तथा आंध्र प्रदेश की पंचायतों में 0 से 18 वर्ष के प्रत्येक बालक का संपूर्ण लेखा–जोखा, पंजिका में दर्ज है। ग्राम पंजीकरणकर्त्ता उसे हर माह अपडेट

करते हुए इस बात की जानकारी रखते हैं कि अमुक बालक गांव में है या नहीं, शिक्षा ले रहा है या नहीं – वह किसी अप्रत्याशित तथ्य से तो नहीं जुड़ा हुआ और अगर कुछ ऐसा पाया जाता है तो तुरंत कार्रवाई कर बालक को तुरन्त संरक्षित किया जाता है। इसके अंतर्गत एक कार्य जो महत्वपूर्ण है वह यह कि संगठन या समितियों के तहत बच्चों की भागीदारी। संगठनों व समितियों द्वारा बच्चों की सुनवाई उनकी अभिव्यक्ति प्रधान होती है। यदि कोई बालक किसी कारणवश सबके सामने अभिव्यक्ति न कर पाये तो उसे अलग से सुना जाए यह भी प्रावधान है जो आयोग के जन सुनवाई कदम का बहुत अहम पहलू है। अतः आयोग समझता है कि योजनाबद्ध तरीके से उचित कार्रवाई ही इस प्रकार के शर्मनाक व असामाजिक अपराधों पर लगाम लगाने में सक्षम है। इन जघन्य अपराधों हेतु केवल संगठन, समिति या गोष्ठी ही पर्याप्त नहीं अपितु आवश्यकता है एकजुट होकर कार्य करने की तथा इस सामाजिक शाप को आम जनता के बीच और पारदर्शी करने व उसके उचित निराकरण की। तभी हमारे समाज व राष्ट्र का प्रत्येक बालक स्वतंत्र रूप से जीवन जी सकेगा और उन्नति के नए अवसर तलाश पाएगा।

प्रश्न : बच्चों से जुड़ी एक अहम् ज़रूरत है –'स्वास्थ्य सेवाएं', जिसके अंतर्गत अधिसंख्य बच्चे कुपोषण के शिकार भी हैं। इस संबंध में आयोग ने क्या पहल की है?

उत्तर : विश्व स्तर पर बच्चों की कुल आबादी का 50 प्रतिशत कुपोषण के शिकार है। जिनमें भारत के आंकड़े देखें तो पाएंगे कि :– हमारे देश में 18 से कम आयु के लगभग 420.7 मिलियन बच्चे हैं। जिनमें कम वज़न जन्में बच्चों का आंकड़ा है 30 से 46 प्रतिशत जो कुपोषण के शिकार हैं। लगभग 30,0000 लड़कियां 15 वर्ष से कम की उम्र में ही कम से कम एक बच्चे को जन्म दे चुकी हैं। स्कूल जाने से पूर्व ही लगभग 67 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के कारण मत्यु को प्राप्त होते हैं। 6. 6 मिलियन बच्चे आयोडीन की कमी के कारण दिमाग़ी समस्या के शिकार होते है। लगभग 33 प्रतिशत बच्चों का टीकाकरण नहीं हो पाता। लगभग 77 मिलियन बच्चों को उपयुक्त पानी नसीब नहीं हो पाता।

यह तो कुछ ऑकड़े हैं पर हमारे देश में सुव्यवस्था बच्चों का अनुपात बहुत कम है। इसका मूल कारण हैं – ग़रीबी। ग़रीबी का मूल कारण है शिक्षा का अभाव। तो सर्वप्रथम शिक्षा के संबंध में जनमानस में चेतना जागृत करने की आवश्यकता है। जिसके लिए हम प्रयासरत है। बच्चों की स्वास्थ्य समस्या एक प्रकार से राष्ट्रीय आपातकाल स्थिति है। साथ ही कुपोषण भी हमारे लिए एक भयंकर समस्या है। इसके लिए हमारे केन्द्र तथा आयोग ने राज्य सरकारों से स्कूल में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए आहार नीति बनाने के लिए पहल की है।

इनके अतिरिक्त हमने सर्वेक्षण में पाया कि आदिवासी क्षेत्रों में स्वास्थ्य समस्या बहुत भयंकर है। आंध्र प्रदेश के आदिलाबाद ज़िले में बहुत से व्यस्क व बच्चे मलेरिया, टायफ़ाइड तथा अन्य संक्रमण से ग्रस्त थे। वहां चिकित्सा संबंधी सुविधा भी नहीं थी। आयोग ने इस तथ्य का खुलासा कर राज्य सरकार को इस ओर उचित कार्रवाई करने को कहा। इसी प्रकार का हाल महाराष्ट्र के सतारा तथा मध्य प्रदेश के अनेक क्षेत्रों में पाया गया। वहाँ पर भी उचित कार्रवाई की गई। साथ ही आंगनवाडी केंद्रों को भी दिशानिर्देश दिए गए। परन्तु अभी भी इस समस्या जूझने हेतू बहुत से कार्य किए जाने शेष हैं। हम यह मानते हैं कि एक स्वस्थ बालक ही स्वस्थ परिवार, स्वस्थ समाज,स्वस्थ राष्ट्र तथा एक स्वस्थ विश्व का निर्माण कर सकता है।

प्रश्न : बाल–अधिकार चूंकि मानव अधिकारों में ही निहित है – अतः हम यह जानना चाहेंगे कि क्या –'अशक्त बच्चे' जो सड़कों पर भीख मांगने पर मजबूर हैं। इसके निराकण हेतु आयोग की क्या नीतियां है?

उत्तर : इस संदर्भ में सर्वप्रथम जानकारी जुटाना एक अहम प्रयास है। हमने दिल्ली में सर्वेक्षण किए। जहांगीरपुरी बस्तियों में रहने वाले दसवीं तथा ग्यारहवीं कक्षा के विद्यार्थियों का एक समूह बनाकर उन्हें प्रशिक्षण देकर भीख माँगने वाले शक्त तथा अशक्त दोनों प्रकार के बच्चों के साथ उनकी सीधी बातचीत उन्हीं के परिवेश में कराई गई। ऐसा करने की मुख्य वजह यह थी कि भिखारी बच्चे इन बच्चों को अपने जैसा ही समझ इनसे अपनी हर वेदना को बांट सके। इस

सर्वेक्षण में पाया गया कि दिल्ली में लगभग 20,600 बच्चे किसी न किसी कारण से सड़कों पर भीख माँगने पर मजबूर हैं। यह आंकडे इस आंकड़े के भी पार है क्योंकि प्रत्येक बच्चे से जब उनके उन्हीं के जैसे दोस्तों के बारे में पूछा गया तो उन्होंने लगभग 5 से 8 नाम और गिनाए। अतः यह विस्तृत आकड़े बेहद शोचनीय है इस स्थिति पर हम दिल्ली सरकार से भी बात करके इन बालकों को बाल कल्याण समिति और किशोरघरों में भिजवाने तथा सर्व शिक्षा अभियान के अर्न्तगत शिक्षा के मन्दिर में भिजवाने के प्रयास के लिए कटिबद्ध है।

प्रश्न : हमारा देश प्राकृतिक आपदाओं का भी देश है, जहां बाढ़, सूखा, भूकंप इत्यादि त्रासदियां समय–समय पर आती रहती हैं और इन तमाम आपदाओं के चलते बहुत से मासूमों को अपना घर–परिवार सब कुछ खो देने के लिए मजबूर हो जाना पड़ता है। ऐसे में प्राकृतिक आपदाओं से त्रस्त बच्चों के बेहतर भविष्य के लिए आयोग की क्या भूमिका है?

उत्तर : प्राकृतिक आपदाओं से त्रस्त बच्चे और साथ ही प्रवासी परिवारों के बच्चों हेतु हमने सर्वेक्षण में पाया कि इस और अपेक्षाकृत कम ध्यान गया है। परन्तु आयोग इस ओर गंभीरता से प्रयासरत है। उदाहरण के तौर पर छत्तीसगढ़, उत्तर–पूर्व आदि क्षेत्रों में इस प्रकार के बच्चों हेतु सघन प्रयासों के बाद कुछ सफलता भी हासिल हुई है। परन्तु अभी भी बहुत कुछ किया जाना शेष है। इसी संदर्भ में गुजरात के बच्चों हेतु भी आयोग ने गुजरात सरकार के मुख्य सचिव को लिखित सूचना भेजी है। इनके अलावा गुजरात में प्रवासी अभिभावकों के लगभग 257 बच्चों को भी बालश्रम से मुक्ति दिलाकर–विद्यालयों में दाख़िला दिलाया गया।

प्रश्न : हमारे देश में आज भी ग़रीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी, अंधविश्वास आदि का मूल कारण है –शिक्षा का अभाव। ऐसे में बच्चों को कारगर शिक्षा उपलब्ध कराने के संबंध में आयोग ने सरकार के साथ क्या पहल की है?

उत्तर : शिक्षा हमारा एक महत्वपूर्ण अधिकार है। तथा जीवन की अहम

ज़रूरत भी है। क्योंकि शिक्षा के अभाव से ही व्यक्ति, परिवार, समाज राष्ट्र व विश्व स्तर पर अन्य कुप्रथाओं और कुघटनाओं का जन्म होता है। ग़रीबी, बीमारी, बालश्रम, भीख माँगना, बाल–विवाह, बाल उत्पीड़न बाल वेश्यावृत्ति, तथा अन्य ग़लत बातों के उद्भव का मूल कारण है। इसके विपरीत अगर व्यक्ति शिक्षित होगा तो वह इन कुप्रथाओं को जन्मने ही नहीं देगा तथा अगर ऐसी बातें कह पाएगा तो उसका पुरज़ोर विरोध करेगा। अतः शिक्षा बहुत ज़रूरी आयाम है सभी के लिए और विशेष तौर पर हमारे बच्चों हेतु, जो हमारे राष्ट्र के भविष्य हैं, मज़बूत नींव हैं। पहला किसी भी बच्चे को संबंधित पीड़ा से निजात दिलाने के बाद आयोग का पहला कदम होता है उस बच्चे को विद्यालय भेजना, उसे शिक्षा दिलवाना। शिक्षा ही उसे प्रत्येक गलत कार्य से दूर कराने में सकारात्मक भूमिका अदा कर, उसे एक गरिमामयी जीवन जीने हेतु प्रेरित करती है। हम अपने देश के आंकड़े जब देखते हैं तो पाते हैं कि केवल 50 से 52 फीसदी बच्चे ही आठवीं पास कर पाते हैं तथा 6 से 14 वर्ष के 1.34 करोड़ बच्चे स्कूल जाते ही नहीं। यह तो कुछ ही आंकड़े हैं। इस संदर्भ में आयोग ने सर्वशिक्षा अभियान तथा निशुल्क शिक्षा अभियान तथा ब्रिज कोर्सेस पर बल दिया है।

आयोग ने अन्वेषक प्रकोष्ठ द्वारा सर्वेक्षण कर, जगह–जगह पर बच्चों को आंगनबाड़ी केन्द्र, नर्सरी स्कूल, तथा अन्य विद्यालयों की राह दिखाई है। दिल्ली, गुजरात, मध्यप्रदेश, पं. बंगाल, बिहार, राजस्थान, आंध्र प्रदेश के बहुत सारे क्षेत्रों में शिक्षा की मुहिम चलाई हुई है क्योंकि इन इलाक़ों में अपेक्षाकृत शिक्षा का अभाव अधिक है। इस सन्दर्भ में हमने ग्राम पंचायतों में प्रत्येक ग्राम के प्रत्येक बच्चों का विवरण दर्ज करने का अनुरोध किया। तदुपरान्त केरल तथा आन्ध्र प्रदेश के कई गाँवों में प्रत्येक माह प्रत्येक बच्चे का पंजीकरण नवीन करते हुए उसकी शिक्षा की स्थिति देखी जाती है कि वह विद्यालय जा रहा है या नहीं।अतः उस प्रकार हम अन्वेषक दल, समिति, संगठन, ग्राम पंचायतों की सहायता से बच्चों को शिक्षा दिलवाने की दिशा में प्रयासरत है। शिक्षा एक ऐसा प्रयास है जो प्रत्येक जन कर सकता है। एक शिक्षित व्यक्ति अगर किसी एक बालक को शिक्षा देता है, दिलवाता है, तो यह एक दान नहीं अपितु यह बालक का एक

महत्वपूर्ण अधिकार है जो वह उसे दे रहा है। शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का मौलिक अधिकार है। शिक्षा के लिए प्रयास करना केवल ग़ैर–सरकारी संस्थान का ही कार्य नहीं अपितु हर ज़िम्मेदार नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह यह मौलिक अधिकार बच्चों को दिलवाने में अपनी महत्वपूर्ण सहभागिता दर्ज करें। एक शिक्षित बालक ही एक उज्जवल राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। शिक्षा का अभाव ही विभिन्न प्रकार की कुप्रथाओं की जननी है। शिक्षा के मन्दिर पर सभी बालकों का समान अधिकार है और यह अधिकार उसे मिलना ही चाहिए।

प्रश्न : बाल–अधिकार के संरक्षण के संबंध में भारतीय जनमानस में जागृति फैलाने के उद्देश्य से आपके क्या प्रयास हैं?

उत्तर : भारतीय जनमानस में "बाल अधिकारों के संरक्षण" हेतु जागृति फैलाना बहुत आवश्यक कदम है। शिक्षा हो, स्वास्थ्य हो, बाल मजदूरी हो, बंधुआ मजदूरी हो, बाल विवाह हो या अन्य कोई भी समस्या। जब तक जन–जागरण नहीं होगा तब तक इन समस्याओं के समाधान की ओर वह प्रयास नही करेगा। अतः पहला कदम है जन–जागृति फैलाना। इस संदर्भ में आयोग के सक्रिय दल, स्थान–स्थान पर जाकर वहाँ के संभ्रांत नागरिकों में बाल अधिकारों के संरक्षण हेतु जागृति फैलाने के साथ–साथ उनमें नई चेतना का आगाज़ करते हैं, उन्हें बाल अधिकारों से जुड़े मुद्दों से अवगत करा उन्हें बच्चों का भविष्य संवारने हेतु मानसिक रूप से तैयार करते हैं। अशिक्षा, कुपोषण, बालश्रम, भीख मांगना, बाल विवाह, बाल वेश्यावृत्ति, बाल उत्पीड़न, बाल ख़रीद–फरोख्त, बच्चों को नशे के कार्यों में लिप्त करना इत्यादि जैसे कुचक्रों से निजात दिलाने हेतु मार्ग दर्शन करके उनको यथासंभव समझाने का प्रयास करते हैं। साथ ही हम ग्राम पंचायतों, ग़ैर–सरकारी संगठनों की सहायता लेकर भी इस जन–चेतना को विकसित करते हैं। स्वयं आयोग भी स्थान – पर जाकर जन–सुनवाई करता है जिनमें बच्चों की भागीदारी विशेष होती है, कुप्रथाओं, अभिशापों से होने वाली एकल, परिवारिक, सामाजिक मानसिक बुराइयों को प्रतिबिंबित कर उन्हें एक स्वास्थ्य, शिक्षित, सुखी, खुशहाल जीवन के मायने बताता है।

प्रश्न : अंत में एक और सवाल वह यह है कि बाल–अधिकारों के संरक्षण के हनन के विरूद्ध यदि कोई दोषी या अपराधी पाया जाता है, तो वह कहाँ पर जाकर अपनी शिकायत दर्ज कराए तथा कितने दिनों के अन्दर उसे न्याय मिलने की कितनी संभावना होती है?

उत्तर : बाल–अधिकारों के संरक्षण के हनन के विरोध में कोई भी व्यक्ति किसी भी समय हमसे जुड़ सकता है। वह स्वयं आयोग आकर, किसी संदेश वाहक द्वारा, पत्र भेजकर, ई.मेल, फैक्स द्वारा या टेलिफ़ोन पर हमसे अपनी शिकायत दर्ज करवा सकता है। एक मोबाइल सेवा नम्बर भी है जिस पर स्वयं मैं भी संपर्क में रहती हूँ। अतः अपनी सुविधा से देश की किसी भी भाषा में वह अपनी शिकायत हमें दर्ज करा सकता है। न्याय मिलने की संभावना, शिकायत की गंभीरता पर निर्भर करती है। वैसे न्याय तत्काल अथवा 1 से लेकर 10 दिनों के भीतर मिलने की पूरी संभावना रहती है। हम अपने तमाम ज़िम्मेदार नागरिकों से ऐसी अपेक्षा रखते हैं कि कहीं भी, कभी भी, किसी भी स्तर पर यदि वह 'बाल–अधिकारों के संरक्षण' के विरूद्ध कोई स्थिति पाते हैं तो एक ज़िम्मेदार नागरिक, एक सच्चे इन्सान होने के नाते अपनी शिकायत आयोग तक अवश्य पहुंचाए। स्वयं भी इस ओर जागृति फैलाए, तभी 'बाल–अधिकारों का संरक्षण' संपूर्णतया हो पाएगा। आपका अमूल्य सहयोग किसी बच्चे की ज़िन्दगी संवार सकता है, उसे खुशहाल तथा गरिमामय भविष्य दे सकता है।

आइये.... हम भी शपथ लें कि मासूम बचपन को बोझ तले नहीं बल्कि शिक्षा के मंदिर में पहुचाएंगे और इस दिशा में हर संभव प्रयास करेंगे।

प्रस्तुति : नीता अग्रवाल

***

बाल विवाह – एक सामाजिक अपराध

आयोग के महत्त्वपूर्ण मामलों पर आधारित कहानियाँ

मानवाधिकार रक्षा की पहल

ब्रजेन्द्र त्रिपाठी*

जनवरी का महीना समाप्त होने को था। ठंड अपने चरम पर थी। तापमान इन दिनों देश के कुछ मैदानी भागों में शून्य तक पहुंच रहा था। सवेरे गहरा कुहासा छाया रहता, जिससे सड़कों पर वाहनों की रफ्तार थम सी जा रही थी। ऐसी ठंडक में भला किसका मन करेगा कि बिस्तर छोड़कर उठे, लेकिन नौकरी जो न कराए। शायद इसलिए 'चाकरी' को निषिद्ध माना गया है।

जनवरी 2003 की एक सुबह। पटना (बिहार) शहर का बाहरी इलाका। सवेरे के 5.00 बजे हैं। अभी अंधेरा छाया हुआ है। पटना के ग्रामीण क्षेत्र की ओर जाने वाली सड़क से एक मारुति वैन तेजी से गुंजर रही है। अकस्मात वैन का दरवाजा खुलता है–कोई मानव शरीर सड़क के किनारे गिरता है। वैन उसी गति से आगे बढ़ जाती है–थोड़ी दूरी पर उसी तरह वैन में से एक और व्यक्ति सड़क पर फेंका जाता है। वैन तेजी से आगे चली जाती है।

क्योंकि यह ग्रामीण क्षेत्र है, लोग प्रातः 4.00 बजे तक उठ जाते है। कुछ किसान उठकर खेतों का चक्कर भी सुबह–सुबह लगा आते हैं। ऐसे ही दो किसान सवेरे सड़क के किनारे के अपने खेत की मेंड़ पर चहलकदमी कर रहे थे कि उन्हें सड़क पर गाड़ी से कुछ फेंके जाने का आभास हुआ वे खेत से सड़क पर आए तो लगभग सौ हाथ के फासले पर पड़े दो मानव शरीर नजर आए। पास जाकर देखा तो चौदह–पंद्रह साल के दो लड़के थे। देखने से लगता था कि उनकी बुरी तरह पिटाई की गई थी। उनमे से एक तो मर चुका था, लेकिन एक की सांस अभी चल रही थी। वह भी बुरी तरह से घायल था और अचेतावस्था में था। अगर जल्दी डॉक्टरी सहायता मिल जाए तो शायद बच जाए। होशियार सिंह और रणजीत सिंह ने गाँव के लोगों को इकठ्ठा किया। मृत और घायल लड़के को अस्पताल ले जाया गया। पुलिस को भी सूचना दी गई। इस बीच मीडिया को भी घटना की जानकारी लग गई थी।

---

*उपसचिव, साहित्य अकादमी

कई चैनलों के संवाददाता भी घटना की जानकारी मिलने पर अस्पताल आ गए थे और घटना की रिपोर्ट दृश्यों के साथ विभिन्न चैनलों पर आने लगी थी।

चैनल पर खबर प्रसारित होने के बाद जो सच्चाई सामने आई वह दिल दहला देने वाली थी। चैनल में खबर प्रसारित होने पर किसी ने उन लड़कों को पहचान लिया। वे रामू और मोहन थे। उन दोनों के पिता पटना की एक फैक्टरी में मजदूर थे और पड़ोस में रहते थे। फैक्टरी के मालिक की लड़की की कल शादी थी। फैक्टरी के मालिक थे –नरेश त्रेहन। उन्होंने शादी के समय घर पर काम करने के लिए दो–एक लड़कों को भेजने के लिए कहा था, तो उन्होंने खुशी–खुशी अपने बेटों को भेज दिया था कि वहां दो–चार दिन काम करेंगे तो कुछ आमदनी हो जाएगी।

रामू के पिता थे– सर्वजीत और मोहन के पिता का नाम था हरेंद्र। खबर मिलने पर वे दौड़े–दौड़े अस्पताल गए। सर्वजीत और उसकी पत्नी रामू के शव पर पछाड़ खाकर गिर पड़े। रामू उनका इकलौता पुत्र था। कोई उन्हें दिलासा भी देता तो क्या देता! क्योंकि पुलिस केस था, इसलिए पोस्टमार्टम जरूरी था। मोहन अभी आई.सी.यू. में था। चोट तो उसे भी बहुत गहरी आई थी, लेकिन अब वह खतरे से बाहर था। खबर मिलने पर फैक्टरी के उनके दूसरे कर्मचारी भी वहां पहुँच गए थे। इनमें से कई फैक्टरी मालिक की लड़की की शादी में भी गए थे।

उन्ही से बातचीत में पता चला कि शादी के घर में से लड़की के गले का हार चोरी हो गया। पूछताछ शुरू हुई । रामू और मोहन पर उनके शक की सुई गई। उन्हें अलग ले जाकर परिवार वालों ने कड़ाई से पूछताछ की, लेकिन उन्होंने अपने को निर्दोष बताया। डराने – धमकाने पर भी जब बात नहीं बनी तो उन्होंने पुलिस को बुला लिया। पुलिस वाले दोनों लड़कों को जीप में बैठाकर ले गए। यह रात की बात थी। और आज सवेरे यह हादसा।

बात मीडिया तक पहुँच चुकी थी। पुलिस संदेह के घेरे में थी क्योंकि स्वतंत्रता के बाद पुलिस का जो चेहरा उजागर होता रहा था, वह मानवता रहित और संवेदना शून्य चेहरा था। इसलिए मीडिया द्वारा पुलिस पर आरोप

लगाया गया था कि बच्चों से चोरी की बात कबुलवाने के लिए थाने में उनकी जमकर पिटाई की गई और जब एक बच्चे की पिटाई से मौत हो गई तो अपना अपराध छुपाने के लिए उन्हें दूर ले जाकर फेंक दिया गया। शायद पुलिस को लगा होगा कि दोनों बच्चे दम तोड़ चुके हैं और पुलिस वालों के खिलाफ कोई साक्ष्य नहीं होगा क्योंकि सामान्यतः ऐसे मामलों में पुलिस थाने में आमद दर्ज ही नहीं करती।

लेकिन मामला जनता के सामने आ चुका था। मीडिया में खबर आने के बाद पुलिस के खिलाफ स्थानीय लोगों का गुस्सा भड़क रहा था। मानव अधिकार के क्षेत्र में कार्य करने वालों तथा विरोधी पार्टी के स्थानीय नेताओं के बयान चैनलों पर आ रहे थे। पुलिस के उच्चाधिकारियों को लगा कि अगर इस मामले में कार्रवाई न की गई तो पुलिस और प्रशासन की बहुत फ़जीहत होगी। क्योंकि इस तरह के मामलों में बिना किसी पक्ष की ओर से शिकायत आए हुए भी मानव अधिकार आयोग स्वतः संज्ञान लेते हुए जाँच करा सकता है, अतः पटना के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक ने इस घटना की सूचना मानव अधिकार आयोग को भेजना उचित समझा। आयोग को सूचना दी गई थी कि दो किशोर एक शादी की पार्टी में जेवर चुराने के संदेह में पुलिस को सौंपे गए थे ताकि पुलिस मामले की तफ़तीश कर सके। इसके अगले दिन उन्हें एक तेज गति से जाती हुई मारूति कार से नीचे सड़क पर फेंक दिया गया था। उनमें से एक की मौत हो गई थी और दूसरा बुरी तरह घायल हुआ था।

मामले को तूल पकड़ता देखकर सरकार ने पटना के एस.डी.एम. द्वारा घटना की जाँच की गई। उनकी जाँच का निष्कर्ष यह रहा कि रामू की मौत की वजह पुलिस द्वारा की गई उसकी बुरी तरह पिटाई थी। उन्होंने अपनी रिपोर्ट में दोषी पुलिस अधिकारियों के विरूद्ध कानूनी कार्रवाई की सिफारिश की। इस पूरी घटना में शामिल थाना प्रभारी, सब इंसपेक्टर और दो सिपाहियों के खिलाफ मामला दर्ज करने की अनुशंसा की गई। न्यायालय में इसके खिलाफ मुकदमा चलाया गया लेकिन मामले की जाँच तो पुलिस को करनी थी सो खोजबीन के नाम पर लीपा–पोती की गई और मामले को पुलिस द्वारा गंभीरता से कोर्ट में नहीं रखा गया। क्योंकि दोषियों के खिलाफ पुलिस ठोस साक्ष्य नहीं उपलब्ध करा सकी, इसलिए न्यायालय द्वारा साक्ष्य के अभाव में उन्हें दोष मुक्त कर दिया गया।

आयोग ने मामले में दिए गए निर्णय और न्यायिक जाँच रिपोर्ट पर विचार करते हुए प्रथम दृष्टया यह पाया कि पुलिस ने बच्चों का उत्पीड़न किया है, इसलिए मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 की धारा 18 के अंतर्गत बिहार सरकार को उनके मुख्य सचिव के माध्यम से कारण बताओ नोटिस जारी किया गया। इसके जवाब में अपर पुलिस महानिदेशक (मानव अधिकार) ने अपने पत्र में लिखा –

"जहां तक पीड़ितों के परिवारों को किसी तरह की आर्थिक सहायता देने का मुद्दा है, यह माननीय राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का परमाधिकार है कि वह इस संबंध में निर्णय करे। तथ्यों के आलोक में स्पष्ट है कि दो किशोरों को आरोपी पुलिस वालों ने हिरासत में यातना दी जिसके कारण एक बालक की मौत हो गई लेकिन आरोपी तकनीकी कारणों से छूट गए। क्योंकि न्यायिक जाँच में आरोपी अधिकारियों को दोषी पाया गया है, इसलिए अगर माननीय आयोग द्वारा पीड़ितों को किसी तरह की आर्थिक सहायता देने की अनुशंसा की जाती है तो उसके विरोध का कोई आधार नहीं है।"

चूँकि राज्य सरकार ने पीड़ितों के परिवारों को क्षतिपूर्ति की जिम्मेदारी स्वीकार कर ली; तथ्यों और मामले की परिस्थितियों को देखते हुए आयोग ने अनुशंसा की कि बिहार सरकार मृत बालक के निकटतम संबंधी को 3 लाख रूपये की क्षतिपूर्ति करे और घायल बालक के निकटतम संबंधी को 50 हजार रूपये की।

बिहार सरकार द्वारा पीड़ित के परिवारजनों को क्षतिपूर्ति की राशि प्रदान की गई। दोषी पुलिस अधिकारियों के विरूद्ध विभागीय कार्रवाई चल रही है।

***

आत्मा पर लगा घाव

ब्रजेन्द्र त्रिपाठी*

वर्ष 2001 के जून महीने की बात है। दोपहर का वक़्त था। सूरज सीधे सिर पर चमक रहा था। राम सिंह को बाल सदन विद्यालय, जयपुर से एक टेलीग्राम मिला। टेलीग्राम में लिखा था कि उसकी बेटी की तबीयत खराब है, वह जल्दी आ जाए। टेलीग्राम पाकर वह घबरा गया उसने पत्नी से सलाह मशविरा किया और घंटे भर बाद ही जयपुर के लिए रवाना हो गया। उसका गाँव जयपुर से लगभग 120 कि.मी. की दूरी पर था।

राम सिंह का दुर्भाग्य ही कहा जाए कि पंद्रह वर्ष पहले जो उसकी पहली संतान हुई, वह बेटी थी, लेकिन जन्म से ही गूंगी और बहरी। संतान होने की जो प्रसन्नता थी, वह इस अभिशाप से काफूर हो गई। लेकिन संतान तो संतान ही होती है। पति–पत्नी मनोयोग से उसका पालन–पोषण करने लगे। धीरे–धीरे वह बड़ी होने लगी। सुंदर गोरा रंग, बड़ी–बडी आंखें, जो भी उसे देखता, मोहित हो उठता। उसका नाम उन्होंने मंजु रखा था। गूँगी–बहरी होने के कारण उसे स्कूल भेजने का कोई प्रश्न ही न था। कहा हुआ तो वह सुन नहीं सकती थी, लेकिन संकेतों की भाषा वह बड़ी कुशलता से पढ़ लेती थी। इशारे समझकर वह काम करती थी। ईश्वर जिसमें कुछ कमी रखता है, शायद वह उसकी पूर्ति दूसरी इंद्रियों को अधिक सक्रिय बनाकर करता है।

मंजु घर पर ही रहती। घरेलू कामों में माँ का हाथ बँटाती। धीरे धीरे वह बारह वर्ष हो गई। रामसिंह अपने गाँव के पास एक छोटे–से कस्बे में एक दुकान में नौकरी करता था। उसके मालिक को पता था कि उसकी बेटी गूँगी और बहरी है। एक दिन बातों–बातों में जयपुर से आए उनके मित्र से इस बारे में चर्चा हुई तो उन्होंने वहां के बाल सदन विद्यालय के बारे में बताया जहाँ इस तरह के विकलांग बच्चों की शिक्षा–दीक्षा की व्यवस्था थी तथा उन्हें स्वरोज़गार के लिए प्रशिक्षण भी दिया जाता था। वह आवासीय विद्यालय था, जहाँ छात्र छात्राओं के रहने की भी व्यवस्था थी।

---

* **उपसचिव, साहित्य अकादमी**

राम सिंह को जब इस तरह के विद्यालय के बारे में पता चला तो उसे बहुत खुशी हुई कि वह अपनी बेटी को वहाँ भरती करा सकेगा जिससे उसका भविष्य संवर सके। अगले सत्र में ही उसने मंजु को उस विद्यालय में लाकर भरती करा दिया और चैन की सांस ली। परिवार को इस बात की खुशी थी कि मंजु इस विद्यालय में पढ़–लिख सकेगी।

राम सिंह बस में बैठा हुआ बेटी के ही बारे में सोचता जा रहा है। उसे उसके बचपन की बहुत सी बातें याद आ रही थीं। वैसे भी राम सिंह अपनी बेटी को बहुत चाहता है। उसकी तो मन से बिलकुल इच्छा नहीं थी कि बेटी को अपने से दूर भेजे, लेकिन उसके भविष्य को देखते हुए उसे अपने से दूर करना पड़ा। उसकी वही लाडली बेटी आज बीमार है। तरह–तरह की दुश्चिंताएं उसके मन में साँप के फन की तरह सिर उठाए हुए हैं। जरूर उसकी बेटी की तबीयत बहुत खराब होगी, नहीं तो विद्यालय द्वारा टेलीग्राम नहीं भेजा जाता। कहीं कुछ अघटित.... उसने अपने मन में उठते हुए विचार को जबर्दस्ती दबाया। नहीं.... नहीं.... उसकी बेटी को कुछ नहीं होगा।

शाम होते–होते वह बाल सदन के गेट पर पहुँच गया। विद्यालय परिसर में ही छात्राओं का हॉस्टल था। वहाँ उसने दरबान से बताया कि वह अपनी बेटी से मिलने आया है। उसे वार्डन के कमरे में ले जाया गया। वह वहां एक कुर्सी पर बैठ गया। थोड़ी देर में वार्डन अपनी एक सहयोगी के साथ आई और कमरे में बैठ गई। कुछ देर तक चुप्पी छाई रही। राम सिंह ने ही चुप्पी तोड़ी अैर वार्डन से पूछा, "मैडम! मंजु को क्या हुआ है? आज ही मुझे उसकी बीमारी का टेलीग्राम मिला और मैं तुरन्त घर से चल दिया था।" वार्डन ने कहा, "राम सिंह जी। बहुत गंभीर बात है। आपकी बेटी ने तो हमारे विद्यालय का नाम डुबो दिया। न जाने वह किसके साथ अपना मुँह काला करती रही! पिछले दिनों जब बीमार हुई और अस्पताल में उसे दिखाया गया तो पता चला कि उसे सात माह का गर्भ है।"

राम सिंह की आँखों के आगे मानों अंधेरा छा गया। उसे लगा कि सब कुछ बहुत तेजी से घूम रहा है। सामने बैठी वार्डन, कमरे की दीवारें, पैर के नीचे की ज़मीन?। कुछ देर तक तो उसके मुँह से आवाज़ ही नहीं निकली। लगा कि उसका गला तेजी से सूख रहा है। उसके सामने रखे पानी के

गिलास को उठाया और उसे एक ही साँस में खाली कर दिया। फिर वार्डेन से कहा, "मैडम! ये सब कैसे हुआ?" मैं तो अपनी बेटी को इस विश्वास के साथ यहाँ भरती करा गया था कि यहाँ आप लोगों के संरक्षण में दूसरी लड़कियों के साथ रहेगी तो उसकी ज़िंदगी सुधर जाएगी। अगर मैं जानता कि यहाँ की स्थिति ऐसी है और उनकी सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है तो मैं हरगिज़ उसे यहाँ नहीं रखता। आप ही बताइए कि इस घटना के लिए कौन ज़िम्मेदार है?

वार्डेन ने कहा, "इसके लिए तो आपकी बेटी ही जिम्मेदार है। वह कोई दूध–पीती बच्ची तो नहीं है। पंद्रह साल से ज्यादा की उसकी उम्र है। आज कल तो बच्चे छोटी उम्र में ही समझदार हो जाते हैं। जो कुछ हुआ है, आपकी बेटी की सहमति से ही हुआ है, किसी ने उसके साथ जबर्दस्ती नहीं की है। ऐसी ही लड़कियाँ पूरा माहौल खराब करती है। अब आप अपनी बेटी को कृपा करके यहाँ से ले जाएं।"

राम सिंह की आँखों में खून उतर आया। उसने चिल्लाकर कहा,"इस घटना के लिए जिम्मेदार मेरी बेटी नहीं है; आप हैं, आपका प्रशासन है। उसके देख–रेख की जिम्मेदारी आपकी थी। वह यहाँ हॉस्टल में रहती है। वैसी भी न तो वह सुन सकती है न बोल सकती है। बिना आपकी अनुमति के वह हॉस्टल से बाहर भी नहीं जा सकती। इसलिए जो भी हुआ, उसकी जवाब–देही आपकी है। मैं आपको कोर्ट में ले जाऊंगा।"

"चलो चलो बहुत देखे हैं कोर्ट में ले जाने वाले! फहीमा, इनकी बेटी को ले आओ और इनके हवाले करो। फिर राम सिंह की तरफ कुछ कागज़ बढ़ाते हुए कहा," इन पर हस्ताक्षर कीजिए और अपनी बेटी को ले जाइए। यह उसकी बेटी के हॉस्टल छोड़ने संबंधी काग़जात थे। राम सिंह ने उन पर हस्ताक्षर कर दिए।

फहीमा मंजु को साथ लेकर आई। साथ में एक बैग था जिसमें उसके कपड़े और अन्य उपयोग की वस्तुएं थीं। मंजु कृशकाय दिख रही थी, उसका चेहरा पीला–सा लग रहा था। राम सिंह की निगाह उसके पेट की ओर चली गई। पेट थोड़ा बाहर की ओर निकला हुआ था। मंजु राम सिंह को देखते ही आकर उसके गले लग गई। उसकी आंखों से आँसू बह रहे

थे जो उसके कंधे पर टपक रहे थे। राम सिंह की भी आंखे भर आई। उसने उसके कंधे को थपथपाया। इस अभागी लड़की के प्रति उसके हृदय में प्रेम और करूणा की भावना ही उमड़ रही थी, किसी तरह की घृणा की नहीं। उसके साथ जो कुछ भी हुआ, क्या वह इसके लिए दोषी थी? यही प्रश्न बार–बार उसके मन में उठ रहा था।

उसे इस बात पर क्रोध भी बहुत आ रहा था कि विद्यालय प्रशासन अपनी गलती मानने के बजाय उसकी बेटी को ही दोषी ठहरा रहा था। राम सिंह छात्रावास से अपनी बेटी को लेकर विद्यालय के प्राचार्य से उनके घर पर मिला। इस घटना के बारे में उनको पहले से सूचना थी। उन्होंने राम सिंह से कहा, "इस घटना की जाँच हम कर रहे हैं। जो भी दोषी होगा, हम उसे छोड़ेंगे नहीं, उसके खिलाफ कार्रवाई करेंगे। इस इस समय आप अपनी बच्ची को घर ले जाएं। उसे इस वक्त उचित देख–रेख की ज़रूरत है।"

रामसिंह क्या करता! वह अपनी बेटी को लेकर गांव वापस आ गया। उसने अपनी पत्नी को इस घटना के बारे में बताया। वह भी खून के आंसू पीकर रह गई।

इस घटना के बारे में राम सिंह ने अपने मालिक को बताया। उन्होंने राय दी कि इस घटना की रिपोर्ट अवश्य की जानी चाहिए ताकि अपराधियों को सज़ा मिले और भविष्य में किसी और लड़की के साथ ऐसी घटना न हो। राम सिंह ने उनकी सलाह पर इस घटना के बारे में एक शिकायत राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को भेजी। आयोग को राम सिंह का एक प्रतिवेदन मिला जिसमें घटना का पूरा विवरण देते हुए, वार्डन तथा उनके सहयोगियों द्वारा किए गए दुर्व्यवहार का भी ज़िक्र था इस मामले की जाँच के लिए जयपुर के पुलिस अधीक्षक को निर्देश दिया गया। पुलिस ने इस मामले में भारतीय पैनेल कोड की धारा 376 के अंतर्गत एफ.आई.आर. दर्ज कर जाँच शुरू की गई। दो महीने बाद मंजु ने एक मृत बच्चे को जन्म दिया। पुलिस ने उसके टीश्यू के नमूने डी.एन.ए. जाँच के लिए सुरक्षित रख लिए।

मामले की समीक्षा करने पर आयोग को लगा कि विद्यालय के अधिकारियों की ओर से हॉस्टल में रहनेवाली बच्चियों की सुरक्षा के प्रति

लापरवाही बरती गई है जिसके कारण इस बच्ची के साथ ऐसी घटना हुई और उसे शारीरिक तथा मानसिक पीड़ा और इस आघात की स्थिति से गुजरना पड़ा। आयोग द्वारा मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत राजस्थान सरकार को 'कारण बताओ नोटिस' जारी किया गया। इसके जवाब में प्रदेश सरकार द्वारा बताया गया कि प्राचार्य और वार्डन के खिलाफ विभागीय जाँच की गई थी जिसमें उन्हें दोषमुक्त करार दिया गया था। प्रदेश सरकार द्वारा यह सूचना भी दी गई कि जिस लड़के पर बलात्कार का संदेह था, उस पर बाल न्यायालय में मुकदमा चला और उसे भी अदालती कार्रवाई के बाद दोषमुक्त कर दिया गया। आयोग ने राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश पर विचार किया और पाया कि सरकार द्वारा उच्च न्यायालय को सूचित किया गया था कि फ़ौजदारी माामले की जाँच पूरी हो चुकी है और सक्षम न्यायालय में सुनवाई के लिए चालान जारी किए जा चुके हैं।

इस मामले पर विचार करते हुए आयोग ने पाया कि आरोपी को बाल न्यायालय द्वारा दोष मुक्त करने से बलात्कार का दाग धुल नहीं जाता। मृत बच्चे का जन्म इस बात का पुख्ता सबूत है कि माँ के साथ यौन दुर्व्यवहार हुआ है। अगर विद्यालय के अधिकारियों की ओर से उसे पूरी सुरक्षा मिली होती तो वह बलात्कार के इस सदमे से बच सकती थी।

किसी गूँगी और बहरी लड़की के इस तरह की घटनाओं का शिकार होने की अधिक आशंका होती है और उसे अतिरिक्त सुरक्षा की जरूरत होती है। जब उसके माँ–बाप ने उसका आवासीय विद्यालय में दाखिला कराया तो उन्हें इस बात का पूरा विश्वास था कि विद्यालय के अधिकारी उसकी उचित देखभाल करेंगे। विद्यालय के स्टाफ़ की ऐसी स्थिति में जिम्मेवारी थी कि वे बच्ची की सुरक्षा और स्वास्थ्य के प्रति अधिक जागरूक रहें। स्कूल स्टाफ़ की ओर से सतर्कता का न बरता जाना एक तरह से विश्वासघात है। अगर आवासीय विद्यालय का संचालन सरकार करती है और वह सुरक्षा दे पाने में असमर्थ रहती है तो पीड़ित द्वारा जो पीड़ा भुगती गई है, सरकार उसके प्रति जवाबदेह है। जब कोई गूँगी बहरी लड़की बलात्कार का शिकार होती है तो वह इस बारे में न तो किसी को बता सकती है और न अपनी पीड़ा का किसी को साझीदार ही बना सकती है।

उसकी खामोशी की चीत्कार अवश्य सुनी जानी चाहिए और वह हर संभव कदम उठाया जाना चाहिए जिससे उसकी घायल आत्मा पर मरहम लग सके। क्षतिपूर्ति की राशि का निर्धारण करते हुए इस बात को अवश्य सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि यह राशि केवल पीड़ित द्वारा उठाए गए कष्ट की मात्रा के लिए नहीं, बल्कि यह जिम्मेदार लोगों के लिए एक कड़ी चेतावनी भी है। परिस्थितियों पर विचार करते हुए, आयोग ने अनुशंसा की कि राजस्थान सरकार शिकायत कर्ता राम सिंह की बेटी को क्षतिपूर्ति के रूप में पाँच लाख रूपए की आर्थिक सहायता दे जो कि मूक एवं बधिर बाल सदन जयपुर में पढ़ते समय बलात्कार का शिकार हुई।

राजस्थान सरकार द्वारा क्षतिपूर्ति की राशि का भुगतान पीड़ित को कर दिए जाने के बाद यह मामला बंद कर दिया गया। मंजु को भले ही सरकार से कुछ पैसे मिल गए लेकिन इससे क्या उसकी आत्मा पर लगा ज़ख्म भर सकेगा, क्या उसे अपने समाज में पहले जैसी प्रतिष्ठा मिल सकेगी। इन सवालों का जवाब तो आने वाला समय ही देगा।

***

हत्या या आत्महत्या

ब्रजेन्द्र त्रिपाठी*

वर्ष 2007 के अप्रैल महीने की बात है। राँची स्थित राजकीय ऑबजरवेशन होम में एक विचाराधीन कैदी ने गले में रस्सी बाँधकर लटककर आत्महत्या कर ली। कैदी की उम्र थी सत्तरह साल, नाम राधेश्याम। उसे एक नाबालिग लड़की रीमा के अपहरण के आरोप में गिरफ्तार किया गया था। नाबालिग होने की वजह से उसे उस सरकारी 'ऑबजरवेशन होम' भेजा गया था। वहाँ आए हुए उसे हफ्ता भर भी न बीता था कि उसने सीलिंग फैन से लटक कर आत्महत्या कर ली थी। इस संदर्भ में ऑबजरवेशन होम के श्याम सिंह ने अपने थाने में भारतीय दंड संहिता की धारा 302/120 बी के अंतर्गत प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। राँची के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक ने इस संदर्भ में राष्ट्रीय मानव अधिकार अयोग को सूचना भेजी।

कहानी यहीं खत्म नहीं होती। राधेश्याम की माँ रेखा ने भी इस संदर्भ में आयोग को एक शिकायत भेजी कि उसके पुत्र की पहले हत्या की गई, फिर उसे आत्महत्या का रूप दे दिया गया। उसने इस संदर्भ में रीना के परिवार वालों की भूमिका पर संदेह जताया कि उन्होंने पुलिस को कुछ खिला–पिलाकर यह काम करवाया। उसने बताया कि जिस लड़की रीना के अपहरण का उसके बेटे पर आरोप था, वह उससे प्रेम करती थी और वह अपनी इच्छा से उसके साथ गई थी, न कि जबरदस्ती । हांलाकि राधेश्याम की पोस्टमॉर्टम की जो रिपोर्ट आई, उसमें बताया गया कि उसकी मौत रस्सी से लटकने के कारण दम घुटने से हुई है।

राँची के वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक ने तीन महीने बाद उर्पयुक्त मामले की जांच के बारे में हुई प्रगति से आयोग को अवगत कराया। उन्होंने बताया था कि जाँच के पश्चात धारा 306/34 के अंतर्गत मामला दर्ज किया गया और आरोपी व्यक्तियों के विरूद्ध न्यायालय में आरोप –पत्र दाखिल किया गया।

वहाँ के एस.डी.एम. ने मौत की परिस्थिति के संदर्भ में जाँच की। अपनी

---

* उपसचिव, साहित्य अकादमी

जाँच के दौरान उन्होंने ऑबजरवेशन होम में निरूद्ध एक दूसरे युवक रमेश का बयान लिया जो राधेश्याम के साथ वहां रखा गया था। रमेश ने बताया कि राधेश्याम रीना को पागलपन की हद तक प्यार करता था। उसने उसका नाम अपनी बांह पर गुदवा रखा था। वह कहा करता था कि अगर रीना से उसकी शादी न हुई तो वह ज़िन्दा नहीं रहेगा, मर जाएगा।

इस मामले की विभिन्न रिपोर्टों पर विचार करने के बाद आयोग ने प्रथम दृष्ट्या पाया कि ऑबज़रवेशन होम के अधिकारी एक किशोर का जीवन बचाने के अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करने में असफल रहे हैं। इसलिए मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत झारखण्ड सरकार को एक नोटिस की गई।

इस कारण बताओ नोटिस के जवाब में राज्य सरकार ने यह दलील दी कि राधेश्याम ने आत्महत्या अपने प्रेम के सफलकाम न हो पाने की कुंठा में की, न की ऑबज़रवेशन होम के किसी कर्मचारी के किसी कृत्य के कारण। सरकार की ओर से यह भी सूचना दी गई कि ऑबज़रवेशन होम के तत्कालीन अधीक्षक को इस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के संदर्भ में अपने कर्त्तव्य में लापरवाही का दोषी पाया गया और उनके सेवा अभिलेख में इस संदर्भ में प्रतिकूल प्रविृटि की गई।

इस मामले की परिस्थितियों पर विचार करते हुए आयोग ने टिप्पणी की कि आरोपी हिरासत में था और राज्य सरकार को ऐसी सभी आवश्यक सावधानियां बरतनी चाहिए थी जिससे वह खुद को किसी तरह की हानि न पहुंचा सके। ऑबज़रवेशन होम के अधिकारी यह बात भलीभांति जानते थे कि संवासी मानसिक रूप से अवसादग्रस्त है और इस बात की पूरी–पूरी आंशका है कि वह आत्महत्या कर सकता है। जब इस तरह की आशंका पहले से थी तो उन्हें उसकी सुरक्षा की विशेष व्यवस्था करनी चाहिए थी और उस पर अच्छी तरह नजर रखनी चाहिए थी। इस तरह की सुरक्षा की व्यवस्था करने में असफल रहने के कारण राज्य सरकार का दायित्व है कि वह मष्तक के परिवार को क्षतिपूर्ति करे। आयोग ने अनुशंसा की कि झारखण्ड सरकार मृतक राधेश्याम की निकटतम रिश्तेदार को क्षतिपूर्ति के रूप में 1 लाख रूपए की आर्थिक सहायता प्रदान करे।

****

नवजात शिशु की अकाल मृत्यु

ब्रजेन्द्र त्रिपाठी*

आगरा नगर के पश्चिम छोर पर झुग्गी–झोपड़ी की एक पूरी बस्ती ही बसी हुई है। बाहर से आने वाले मजदूर, छोटे–मोटे रोजगार करने वालों, अपराधियों और बांग्लादेशियों से पटी पड़ी है यह बस्ती। यहां तरह–तरह की अवैध गतिविधियां चलती रहती हैं। ऐसा नहीं कि पुलिस को इन गतिविधियों की जानकारी न हो। असल में इस तरह की असामाजिक गतिविधियां पुलिस की मिलीभगत से ही चलती हैं। ये लोग पुलिस वालों को पैसा खिलाते हैं और पुलिस आंख मूंद लेती है। लेकिन कभी–कभी मीडिया में खबरें आने पर और ऊपर से दबाव पड़ने पर कुछ कार्रवाई करनी पड़ती है।

रामकली अपने पति के साथ इसी बस्ती की एक झुग्गी में रहती है। उसका पति तो मेहनत मजदूरी करता है, लेकिन रामकली घर पर ही कच्ची शराब की भट्टी चलाती है। कल उसकी बस्ती पर पुलिस का छापा पड़ा और पुलिस ने उसे अवैध शराब बनाते हुए गिरफ्तार कर लिया। जब पुलिस ने उस गिरफ्तार किया तो वह 7 महीने गर्भ से थी।

पुलिस ने रामकली के विरूद्ध अवैध शराब बनाने के आरोप में मामला दर्ज कर उसे गिरफ्तार कर लिया और उसे जिला जेल आगरा में रखा गया। दो महीने बाद जेल में ही उसने एक बच्चे को जन्म दिया। जेल में मां–बेटे की देखभाल ठीक से न होने के कारण बच्चा बीमार पड़ा और उसकी मौत हो गई।

जेल प्रशासन द्वारा इस मामले में न्यायिक जांच कराई गई। इस मामले में रामकली की ओर से एक याचिका मानव अधिकार आयोग में दाखिल की गई जिसमें इस घटना से जो मानसिक आघात उसे पहुंचा था, उसके लिए क्षतिपूर्ति की मांग की गई थी।

---

* **उपसचिव, साहित्य अकादमी**

न्यायिक जांच में कहा गया था कि बच्चे का जन्म अस्पताल के वार्ड में न होकर जेल के टॉयलेट में हुआ था वह तो बच्चे का भाग्य जो इतने दिनों भी जी गया क्योंकि जन्म के बाद न तो मां और न ही बच्चे को पोषक आहार दिया गया। आयोग ने मामले पर विचार किया और पाया कि जेल में क़ैदियों को जो सुविधाएं मिलनी चाहिए, नहीं थी। यहाँ तक कि जो न्यूनतम सुविधाएं प्रसव के लिए होनी चाहिए, नहीं थी, साथ ही प्रसव के बाद मां और बच्चे की जो देखरेख की जानी चाहिए, नहीं की गई। सारे मामले पर विचार करते हुए आयोग ने अनुशंसा की पीड़ित मां को भरपाई के लिए सरकार द्वारा 1 लाख की आर्थिक सहायता दी जाए।

***

क़ैदी पर अत्याचार

ब्रजेन्द्र त्रिपाठी*

बंगाल के 24 परगना ज़िले की घटना है। वहां के एक छोटे से कस्बे का रहने वाला रवि कुसंगति के कारण बचपन से ही आपराधिक गतिविधियों में लिप्त हो गया। शुरूआत तो उसने घर से ही की। वह पिता की तीन संतानों में बीच का था। उससे एक बड़ा भाई था और एक छोटी बहन। उसे आरम्भिक पढ़ाई के लिए गांव की प्राइमरी पाठशाला में भरती कराया गया, लेकिन पढ़ने में उसका मन नहीं लगता। वह रास्ते में ही से अपने कुछ साथियों के साथ स्कूल न जाकर पास के पोखर और आमों के बगीचे में चला जाता और दिनभर खेल कूद कर शाम को घर आ जाता। किसी–किसी तरह से उसने पाँचवी कक्षा उत्तीर्ण की। उसी बीच दोस्तों की संगति में बीड़ी–सिगरेट पीनी शुरू की। गाँव से लगे कस्बे के एक इंटर कॉलेज में आगे की पढ़ाई के लिए उसे भरती कराया गया, लेकिन वह मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण न कर सका। बीच की कक्षाओं में भी कई–कई बार फेल हुआ। इस बीच अपनी रोज़ की ज़रूरतों के लिए घर से रूपए चुराने लगा। एकाध बार घर का छोटा–मोटा सामान भी बेच दिया।

अब रवि पच्चीस साल का हो चुका था, लेकिन सुधरने की जगह उसकी आदतें और बिगड़ती गईं। पास की सुनसान जगहों में अपने कुछ साथियों के साथ किसी अकेले राही को देखकर लूट लेना, लोगों से मार–पीट करना, शराब पीकर हुड़दंग मचाना जैसी घटनाएँ आए दिन करने लगा। पिता ने उसे इन आदतों के चलते घर से निकाल दिया तो वह पास के कस्बे में जाकर रहने लगा।

एक दिन उसके पिता को सूचना मिली कि उसे और उसके दो साथियों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया है।उन्होने एक आदमी को बुरी तरह मारपीट कर उसके पास से दस हजार रूपए और दूसरा बहुत–सा सामान लूट लिया था। उसकी इतनी बुरी तरह पिटाई की गई थी कि वह मरणासन्न अवस्था में था। जब कई दिनों बाद में उसे होश आया तो उसने अपनी गवाही में जिस व्यक्ति का हुलिया बयान किया था, उसके आधार पर पुलिस ने उसे गिरफ्तार कर लिया। उस पर न्यायालय में मुकदमा चल रहा था और पुलिस ने उसे जिला जेल मे निरूद्ध कर रखा था।

*** उपसचिव, साहित्य अकादमी**

जेल में बंद होने पर भी रवि की आदतें नही बदली थीं। वहाँ भी जेल के कर्मचारियों की मिली–भगत से उसे नशे की चीजें मिल ही जाती थीं। ऐसे ही एक दिन उसने कच्ची शराब का जुगाड़ किया और पीकर वहाँ हंगामा करने लगा। उसी सेल में दूसरे कैदी भी बंद थे। उनमें से एक के साथ वह भिड़ गया और एक कैदी को सर्जिकल ब्लेड मारकर घायल कर दिया। हंगामा सुनकर वार्डन वहाँ पहुँचा और सारे वाकए की जानकारी ली। जब उसने रवि को डाँटा तो वह वार्डर को भी गाली देने लगा। इस पर वार्डर को भी गुस्सा आ गया। उसने उसको कई डंडे रसीद किए और दूसरे कैदियों की सहायता से उसके हाथ पीछे करके बाँध दिए। उसने कैदियों से कहा, "इसको इसी तरह शाम तक खड़ा रखो। अगर बैठने की कोशिश करे तो इसकी पीठ पर डंडे बरसाओ तभी इसकी अक्ल ठिकाने आएगी।"

यह घटना सुबह 10 बजे की थी। जब भी वह बैठने की कोशिश करता वार्डर के आदेशानुसार दूसरे कैदी, उस पर डंडों से प्रहार करते। इस प्रकार दोपहर का एक बज गया। अचानक कैदियों ने देखा कि वह नीचे गिर पड़ा है। जब वे उसके पास पहुंचे तो उसके शरीर में कोई हरकत होती नहीं दिखाई पड़ी। उन्होंने उसकी नाड़ी देखी। वह बंद थी। दिल की धड़कन भी बंद थी। उन्होंने चिल्लाकर इसकी सूचना तैनात गार्ड को दी। इस घटना बारे में सुनकर वार्डर दौड़ा–दौडा डॉक्टर के साथ आया। डॉक्टर ने परीक्षण किया और निराशा में सिर हिला दिया।

रवि की मौत हो चुकी थी। जाहिर था कि वह इस पूरे सदमे को बर्दाश्त नहीं कर पाया था क्योंकि हवालात के कैदी की मौत हुई थी, इसलिए अधीक्षक ने इसकी सूचना राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को भेजी। रवि के बड़े भाई ने भी इस घटना के संबंध में एक शिकायत पत्र आयोग को भेजा कि जेल में प्रताड़ना की वजह से उसके छोटे भाई की मौत हो गई है। इस याचिका पर आयोग की ओर से पश्चिम बंगाल सरकार को नोटिस जारी की गई। राज्य सरकार ने वार्डर का बचाव करते हुए कहा कि वार्डन ने हुड़दंगी कैदी को काबू में करने के लिए यह काम किया था। उसका इरादा उसकी प्रताड़ना का नहीं था।

लेकिन सरकार के इस तर्क को खारिज कर दिया गया और कहा गया कि इस तरह के कैदी को नियंत्रण में करने के कई बेहतर और शालीन तरीके हो सकते थे। अगर तुरन्त किसी डॉक्टर को बुलाकर उसका उचित इलाज किया गया होता तो शायद उसकी जान बच जाती। वार्डन का कृत्य अत्यंत अमानवीय था कि उसने कैदी के हाथ पीछे बाँधकर उसे तीन घंटे से भी अधिक समय तक खड़ा रखा। आयोग का मत था कि तीन घंटे तक इस प्रकार खड़े रहने के कारण जो थकान और तकलीफ़ हुई, उसी के कारण दिल का दौरा पड़ा और कैदी की मौत हो गई। आयोग ने इसकी भरपाई के लिए मृतक के निकटतम रिश्तेदार को रूपए एक लाख की आर्थिक सहायता देने की अनुशंसा की।

***

पुस्तक समीक्षा

सूचना का अधिकार : एक कारगर हथियार

शिवानी खरे*

पुस्तक का नाम – सूचना का अधिकार–व्यावहारिक मार्गदर्शिका,
लेखक–विष्णुराजगढ़िया
अरविंद केजरीवाल
प्रकाशक – राजकमल प्रकाशन
मूल्य – 200 रू0

'दुनिया हरदम एक जैसी नहीं रहती'। बदलती रहती है। वक्त के मुताबिक, जरूरत के मुताबिक। आदिम समाज–व्यवस्था और कबीलाई समाज से विकास के क्रम में राजतंत्र और नवाबशाही, औपनिवेशिक और समाजवादी शासन से लेकर लोकतंत्र तक के प्रयोग सामने हैं। अब ऐसा क्यों मान लिया जाए कि सामाजिक–राजनीतिक बदलाव का वह सफर खत्म हो चुका है और मौजूदा प्रणाली ही अंतिम, अपरिहार्य है?

सही प्रश्नों के उत्तर को खोजने की प्रक्रिया में सूचना के अधिकार और उससे होने वाले परिवर्तनों की संभावनाओं को केंद्र में रखकर प्रस्तुत पुस्तक की आधार पीठिका तैयार की गई है। इसमें सूचना के अधिकार के राजनीतिक और ऐतिहासिक आधार को सामने रखते हुए आजादी पूर्व और उससे भी अतीत में जाते हुए वैश्विक परिदृश्य में इसके आविर्भाव और विकास के तथ्यों को बड़े ही सहज एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

हमारे समाज के जन्म, विकास और आधिपत्य के विचारों के साथ मनुष्य ने जो भी सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रगति की, उसमें लोकहित और समाजहित, **'लोका समस्ता सुखिनः भवन्तु'** जैसी सद्भावना का स्थान स्वहित और व्यक्तिगत हित, 'अहम् ब्रह्मास्मि' ने ले लिया। शासन व सत्ता के मद में चूर राजनैतिक–आर्थिक शक्तियों ने विकास और प्रगति से जुड़े तमाम सवालों से बचने के लिए राजहित में सूचना को गुप्त रखने का माध्यम ढूँढ़ा और कब, कैसे सूचना को गुप्त रखने का राजहित का यह आधार स्वहित में बदल गया, भान ही नहीं हुआ। कबीला, राजतंत्र, कुलीनतंत्र,

---

* स्वतंत्र लेखिका एवं समीक्षक

लोकतंत्र तक आते–आते तंत्रों के स्वरूप में ढांचागत और स्वरूपगत बदलाव तो आए लेकिन सूचना को गुप्त रखने की आवश्यकता की आड़ में भ्रष्टाचार, घूसखोरी, भाई–भतीजावाद, नैतिक पतन तथा किसी भी ?

जवाबदेही से पल्ला झाड़ लेने जैसी प्रवृत्तियों का बोलबाला हो गया। जब तक हमारा विकासशील और विकसित समाज सावन के अंधे की भांति हरियाली से परे उजाड़–बियाबान को देख पाता, 'जनता का', जनता के लिए, जनता के द्वारा' शासन को समझ पाता तब तक सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक प्रगति बुरी तरह प्रभावित हो चुकी थी।

लेकिन वक्त रहते विश्व के अन्य देशों के नक्शे–कदम पर चलते हुए भारत में भी सूचना पाने को एक अधिकार का दर्जा दे दिया गया। 12 अक्टूबर 2005 को एक लम्बे सैद्धांतिक और राजनैतिक मंथन के बाद इस अधिकार को संवैधानिक जामा पहना दिया गया। और अब इस रूप में एक नए किस्म के 'प्रत्यक्ष लोकतंत्र' का अनूठा प्रयोग तेजी से अपने विकास की राह पर आगे बढ़ रहा है। यह प्रयोग 'पूंजी, पार्टी और पावर' के इस खतरनाक समीकरण को अब चुनौती देता दिख रहा है। इस पुस्तक में संकलित उदाहरणों, तथ्यों और सूचनाओं के माध्यम से आप देख पाएंगे कि किस तरह लोकतांत्रिक राजशाही तेजी से अपने अंजाम की ओर बढ़ रही है। यदि इस शस्त्र का विवेकपूर्ण ढ़ंग से और कुशलता के साथ उपयोग किया जाए तो देश को सच्चे लोकतंत्र और सुशासन की दिशा में आगे ले जाने का रास्ता खुल सकता है और इस दिशा में भारत के आम नागरिकों का मार्ग–दर्शन करना ही इस पुस्तक का वास्तविक उद्देश्य है।

इस पुस्तक को लेखकद्वय ने मुख्यतः तीन खंडों में बांटा है, जिसका पहला खंड सूचना के अधिकार की अवधारणा, उससे जुड़े आंदोलनों और इस क्षेत्र में मिली उपलब्धियों का सिलसिलेवार ब्यौरा देता है। दूसरा खंड एक नागरिक मार्गदर्शिका है जो कि इस अधिकार का लाभ उठाने के व्यावहारिक पक्ष पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। तीसरा खंड परिशिष्ट का है जो भारतीय संविधान के अंतर्गत सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005, सूचनाधिकार संबंधी शुल्क और केंद्रीय व राज्यों के मुख्य सूचना आयुक्त संबंधी विवरण पेश करता है।

समग्र दष्टि से यह पुस्तक सूचना के अधिकार के विचार को समझने, उससे लाभ उठाने के व्यावहारिक पक्ष और भारतीय संघ में उसकी वास्तविक स्थिति का मसौदा पेश करती है।

पुस्तक की भाषा सहज, सरल, लयबद्ध एवं प्रवाहमान है। पुस्तक को विभिन्न अध्यायों में विभक्त कर इस महत्वपूर्ण एवं समसामयिक विषय पर बहुत ही प्रभावशाली एवं क्रमबद्ध रुप से प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है, जो न केवल इस पुस्तक की उपयोगिता एवं स्वयं सिद्धता को दर्ज कराता है अपितु इसे एक धरोहर के रूप में स्थापित करने में पूर्णतः सक्षम बनाता है। दोनों लेखक साधुवाद एवं बधाई के पात्र है।

***

नए प्रकाशन

राज्य की अभिरक्षा और मानव अधिकार

एक व्यक्ति को विभिन्न प्रायोजनार्थ राज्य की अभिरक्षा में लिया जाता है। राज्य के आपराधिक कानूनों को तोड़ने वालों को पुलिस हिरासत में लेती है। दीवानी कानूनों की पालना सुनिश्चित कराने के लिए सिविल कानूनों में दोशियों को अभिरक्षा में लेने के प्रावधान हैं। टैक्स की चोरी करने वालों से टैक्स वसूल करने के लिए राजस्व अधिकारियों को गिरफ्तारी के अधिकार दिए गए हैं। निवारक नजरबन्दी कानून भारतीय संविधान और कानून की एक विशेशता है। समाज में शान्ति और व्यवस्था बनाए रखने के लिए, बाहरी एवं आन्तरिक समाज विरोधी तत्त्वों से देश की सुरक्षा की खातिर तथा नागरिकों को जीने के लिए स्वस्थ्य और निश्कंटक वातावरण उपलब्ध कराने के लिए भारतीय कानूनों में निवारक गिरफ्तारियों की व्यवस्था की गई है। भारत सामाजिक, आर्थिक, भाशायी, सांस्कृतिक और धार्मिक विविधाओं से परिपूर्ण देश है। देश की अखंड़ता और प्रभुसत्ता अक्षुण्य रखने के लिए काफी अधिक संख्या में सेना और अर्द्ध–सैनिक बलों की जरुरत पड़ती है। सुरक्षा–बलों में देश–भक्ति और अनुशासन सुनिश्चित करने के लिए उच्च अधिकारियों को सम्बधिंत कानूनों में दोषी सदस्य को हिरासत में लेने के विस्तृत अधिकार दिए गए हैं। राज्य उन सभी का संरक्षक भी है जो अपने माता–पिता और समाज की उपेक्षा के शिकार है और जिन्हें सरकारी संरक्षण की दरकार है। इसीलिए, विभिन्न कानूनों में 'देखभाल' और 'सुधार' की दृष्टि से जरुरतमन्दों को सरकारी अभिरक्षा में लेने के प्रावधान किए गए हैं। महिलाओं और बच्चों की गिरफ्तारी के सम्बन्ध में अलग से दिशा–निर्देश और कानून उपलब्ध हैं। सरकारी अभिरक्षा का मुद्दा व्यक्ति की गरिमा, स्वतन्त्रता, नैतिकता और पीड़ितों को मुआवजे जैसे अनेक मसलों से जुड़ा हुआ है। राज्य की अभिरक्षा से सम्बन्धित कानूनों का विश्लेषण करके इन कानूनों की संवैधानिकता तथा व्यक्ति को उपलब्ध संवैधानिक सुरक्षा का परीक्षण इस पुस्तक में किया गया है।

पुस्तक का नाम	: राज्य की अभिरक्षा और मानव अधिकार
लेखक का नाम	: डॉ. के.पी. सिंह,आई.पी.एस.,
प्रकाशक का नाम	: द ब्राइट लॉ हाउस, आसफ अली रोड, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष	: 2009